प्रकाशक
छगनमल बाकलीवाल
मालिक
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई नं० ४

मुद्रक
ज्योतीप्रसाद गुप्त
महावीर प्रेस, किनारीबाजार
आगरा।

जयपुर निवासी

कविवर श्रीभदीचन्द्रजी (बुधजनजी) वैजका

संक्षिप्त परिचय

जैन-साहित्यके इतिहासमें जितना गौरव जयपुर (जैनपुर) नगरको प्राप्त है, उतना शायद ही किसी अन्य नगरको हो। जयपुर राज्यका इतिहास इस बातका साक्षी है।

मोक्षमार्गप्रकाशकके रचयिता विद्वद्वर्य पं० टोडरमलजी तथा न्याय और सिद्धांतके विद्वान् पं० जयचन्द्रजीको कौन नहीं जानता ? ये दोनों महापुरुष भी इसी नगरके निधि थे। परन्तु शोकका विषय है, कि आज उन उद्भट विद्वानोंका देश तथा धर्मकी बलि-वेदीपर हँसते हँसते प्राण दे देनेवाले सैकड़ों जैन वीरोंका नाम लुप्तप्राय हो रहा है। सचमुच यह साहित्यिक ह्रास एक स्वाभिमानी जैनीके लिए वज्राघातसे भी अधिक दुःखप्रद है। समाज और साहित्यका कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, इसे कौन नहीं जानता, जिस समाजका साहित्य नष्ट हो चुका है उस समाजका अन्त भी निकट ही समझिये।

जैन-साहित्यकी दयनीय दशाको देखकर वयोवृद्ध मास्टर मोतीलालजी संघी, प्रबन्धक श्रीसन्मति पुस्तकालय जयपुरसे न रहा गया। आपने जयपुरीय जैनविद्वानों तथा कवियोंकी कृतियोंका उद्धार करनेका संकल्प किया, उसीके फल स्वरूप आप अनेक कष्टोंको सहते हुए खोजका काम कर रहे हैं, इस खोजके सम्बन्धमें कई जैनपत्रोंमें लेख निकल चुके हैं। आज हम सतसईके पाठकोंके समक्ष उसके रचयिता कविवर श्रीभदीचन्द्रजी वजकी पवित्र जीवनी रखते हैं। यह हमें मास्टर सा० की कृपा से प्राप्त हुई है, इस कृपाके लिये हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। हमारी हार्दिक भावना है, कि मास्टर साहेब को इस कार्यमें दिन दूनी रात चौगुनी सफलता प्राप्त हो, हर एक जैनी का कर्त्तव्य है कि वह मास्टर साहेब को इस कार्य में यथाशक्ति सहायता दे।

कवि-परिचय।

वंशवृक्ष।

कविवर भदीचन्द्रजी जयपुर निवासी श्री निहालचन्दजीके तीसरे पुत्र थे। आपका गोत्र वज था। जाति आपकी खण्डेलवाल थी। निम्नस्थ वंश-वृक्षसे आपके वंशका भली भांति परिचय मिलता है:—

* शोभाचन्द्रजी
|
पूरणमलजी †
|
(१) निहालचन्द्रजी (२) जादुदासजी
|
(१) गुलाबचन्द्रजी, (२) अमीचन्द्रजी, (३) भदीचन्द्रजी, (४) श्योजीरामजी, (५) गुमानीरामजी, (६) भगतरामजी,
|
अमरचन्द्रजी
|
मोतीलालजी
|
सोनजी
|
फूलचन्द्रजी

---

* श्रीशोभाचन्द्रजीकी जन्मभूमि आमेर थी। आप वहाँ बहुत समय तक रहे थे। परन्तु अब वहाँ निर्वाह नहीं हुआ, तब आप सांगानेर (जयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर) चले गये।

† श्रीपूरणमलजी पूर्वमें सांगानेरमें रहते थे, परन्तु अपने निर्वाहके लिये आपको भी जयपुर जाना पड़ा था।

अभी तक आपके जन्मका समय तथा बाल्यकालका हाल प्राप्त नहीं हुआ है, केवल इतना पता लग पाया है, कि आपने विद्याध्ययन पं० मांगीलालजीके पास किया था। जो टिक्कीवालोंके रास्तेमें रहते थे। जैनधर्मके प्रति बाल्यकालसे ही आपकी भक्ति थी। आप श्रावक के षटावश्यकोंको यथाशक्ति पालते थे। आप दीवान अमरचन्द्रजीके मुख्य मुनीम थे। दीवानजी आपके कार्यसे सदैव सन्तुष्ट रहते थे, और आपपर पूर्ण विश्वास रखते थे। वे जो कुछ नवीन कार्य करते उसमें आपसे अवश्य सलाह ले लेते थे। दीवानजी प्रायः अपने खास काम इनकी अध्यक्षतामें ही कराते थे। एक बार दीवानजीने एक जैनमन्दिर बनवानेके लिये कहा तो आपने आज्ञा पाते ही एक की जगह दो मन्दिर बनवाना आरम्भ कर दिया। हमारे चरित-नायककी यह हार्दिक इच्छा थी, कि इन दोनों मन्दिरों-पर दीवानजीका ही नाम रहे। इनको दो मन्दिर बनवाते देख कई लोगोंने दीवानजीसे कविवरके विरुद्ध चुगली खाई और कहा कि देखिये, आपका गुमास्ता कैसा नीच कार्य कर रहा है। आपने तो उसको एक मन्दिर बनवानेका हुक्म दिया था, लेकिन वह दो बनवा रहा है, और दूसरे मन्दिरके लिये वह

आपके मन्दिरका मसाला चुरवा २ कर मँगाता है। इससे मालूम होता है, कि उसकी नीयत खराब है। ऐसे व्यक्तिको आप नौकर न रखिये। दीवानजीने उसकी बातें सुनकर कहा कि भदीचन्द्रजी मकान वगैरह अपने निर्वाहार्थ तो बनाते ही नहीं हैं। वे तो भव्य-जीवोंके कल्याणार्थ जिनालय बनवाते हैं। अच्छा है, उन्हें जैसा चाहे वैसा करने दो। उसके बाद एक दिन जब उनकी शिकायत करनेवाले मन्दिरजी-के पास खड़े हुए थे दीवानजी वहाँ जा पहुँचे और कहने लगे, भदीचन्द्रजी, दूसरे मन्दिरमें भी आप जी खोल कर काम करवाइये। किसी प्रकारकी कमी न रहने दें, दीवानजीकी यह बात सुनकर चुगलखोरों-का चेहरा उतर गया। मन्दिरोंके बन चुकनेपर भदीचन्द्रजीने उनमें भगवानकी प्रतिमाओंके स्थापन-का विचार किया। आपने शिलावटोंके पास ६ माह तक बैठकर शास्त्रानुकूल बड़ी ही मनोज्ञ प्रतिमाएं बनवाई।

*इन दोनों मन्दिरोंका पंचकल्याणक महोत्सव

---

* दीवानजीके मन्दिरमें श्री मूलनायककी प्रतिमा चँवरीमें विराजमान है तथा श्रीभदीचन्द्रजीके जिनालय में श्रीमूलनायक श्री १००८ श्रीचन्द्रप्रभ भगवानकी

बड़ी धूमधामके साथ हुआ, सब काम समाप्त हो जानेपर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि दूसरा मन्दिर किसके नामसे प्रख्यात हो। ❀दीवानजी उसपर कविवरका नाम लिखवाना चाहते थे, परन्तु उनका कहना था, कि मेरा इसपर कुछ भी अधिकार नहीं है। दीवानजीका ही नाम लिखा जाना चाहिये। परन्तु दीवानजीने भदीचन्द्रजीका नाम ही खुदवाया, और इस ही नामसे इस मन्दिरको विख्यात किया।

हमारे चरित्रनायक उच्चकोटिके पंडित थे, आपकी शास्त्र बाँचने तथा शंका समाधान करनेकी शैली बहुत ही श्रेष्ठ तथा रुचिकर थी। आपकी शास्त्रसभामें अन्यमतावलम्बी भी आते थे। आप उनकी शंकाओंका निवारण बड़ी खूबीके साथ करते थे।

प्रतिमा सफेद संगमरमरके बने हुए समोशरण में सुशोभित हैं। आपके मन्दिरजीकी बिम्बप्रतिष्ठा सं० १८६४ में हुई थी। आपने अपने मन्दिरजीकी दीवार पर यह उपदेश खुदवाया था "समय पाय चेत भाई—(२) मोह तोड़ विषय छोड़—(३) भोग घटा।"

❀ इन दोनों मन्दिरोंमें गुमानपंथाम्नाय है। दीवानजी तथा कविवर भदीचन्द्रजी गुमानपंथाम्नायी थे, दीवानजीका मन्दिर जयपुरमें छोटेदीवानजीके मन्दिर के नामसे प्रसिद्ध है।

आप उच्च कोटिके कवि भी थे । आपकी कविता-का विषय भव्य प्राणियोंको जैनधर्मके सिद्धान्त समझाना तथा प्रवृत्ति-मार्गसे हटा कर निवृत्ति-मार्ग में लगाना था।

आपके बनाये हुए चार ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, और वे चारों ही छन्दोबद्ध हैं। १ तत्त्वार्थबोध, २ बुधजनसतसई, ३ पंचास्तिकाय, ४ बुधजनविलास। ये चारों ग्रंथ क्रमसे विक्रम संवत् १८७१-७९-९१-९२ में बनाये गये हैं । नं० २ का ग्रन्थ आपके हाथमें है । बुधजन-विलास बहुत बड़ा ग्रंथ है, जिसका बहु भाग जैनपद-संग्रह पाँचवां भाग (२३३ पद) इष्टछत्तीसी छहढाला वगैरः जैन-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं ।

हम सहृदय पाठकोंके अवलोकनार्थ कुछ दोहे उद्धृत करते हैं, पाठक स्वयं ही देख लेंगे कि ये दोहे वर्त्तमान समयमें प्रचलित वृन्द, रहीम, बिहारी, तुलसी, कबीर आदि स्वनामधन्य कवियोंके दोहोंसे किसी भी अंशमें कम नहीं हैं:—

दुष्ट भलाई ना करे, किये कोटि उपकार ।
सर्प न दूध पिलाइये, विष ही के दातार ॥ (बुधजन)

मूरखको हितके वचन, सुनि उपजत है कोप ।
साँपहि दूध पिलाइये, ज्यों केवल विष ओप ॥
(वृन्द)

एक चरनहू नित पढ़ै, तो काटे अज्ञान ।
पनिहारीकी नेजसों, सहज कटे पापाण ॥
(बुधजन)

करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जाततें, सिल पर होत निशान ॥
(रहीम)

सीख सरलको दीजिये, विकट मिलें दुख होय ।
बया सीख कपिकों दई, दियो घोंसला खोय ॥
(बुधजन)

सीख वाहिको दीजिये, जाको सीख सुहाय ।
सीख न दीजे बाँदरा, बया घर वह जाय ॥
सींग पूंछ बिन बैल है, मानुष बिना विवेक ।
भख्य अभख समझे नहीं, भगिनी भामिनि एक ॥
मुखतैं बोले मिष्ट जो, उरमैं राखै घात ।
मीत नहीं वह दुष्ट है, तुरत त्यागिये भ्रात ॥
जननी लोभ लबारकी, दारिद दादी जान ।
कूरा कलही कामिनी, जुआ विपतिकी खान ॥
स्यार, सिंह, राक्षस, अधम, तिनका भख है मांस ।
मोक्ष होन लायक मनुष, गहैं न याकी बास ॥
मदिरा पी मत्ता मलिन, लोटे बीच बजार ।
मुखमें मूतैं कूकरा, चाटैं बिना विचार ॥

द्विज खत्री कोली बनक, गनिका चाखत लाल ।
ताको सेवत मूढ़ जन, मानत जन्म निहाल ॥
जैसे अपने प्रान हैं, तैसे परके जान ।
कैसे हरतें दुष्टजन, बिना बैर पर प्रान ॥
चोरत डरत भोगत डरे, गरैं कुगति दुःख घोर ।
लाभ लिख्यो सो ना टरैं, मूरख क्यों है चोर ॥
अपनी पगतरा देखिकैं, जैसा अपने दर्द ।
तैसे ही परनारिका, दुःखी होत है मर्द ॥

स्वयं कविजीने अपने ग्रन्थका सार निम्नस्थ पद्यमें दर्शाया है ।

भूख सहो दारिद्र सहो, सहो लोक अपकार ।
निंद काम तुम मति करो, यहै ग्रन्थको सार ॥

ग्रन्थ समाप्ति के समय-सम्बन्धमें आपने निम्न लिखित दोहा लिखा है ।

संवत ठारासै असी, एक बरसतें घाट ।
जेठ कृष्ण रवि अष्टमी, हूवे सतसई पाठ ॥

इनके पद भागचन्द, दौलत, भूधर, द्यानत, महाचन्द्र, जिनेश्वर आदि कवियोंके पदोंसे किसी भी बातमें कम

१ लार ।

नहीं हैं। पदोंकी भाषा बिलकुल जयपुरी नहीं है, पर कुछ पद आपने ठेठ जयपुरी भाषामें ही लिखे हैं। उनमेंसे कुछ पद हम पाठकोंके अवलोकनार्थ उद्धृत करते है।

चाल 'तिताला'

और ठौर क्यों हेरत प्यारा,
तेरे हि घटमें जाननहारा ॥ और ॥ टेक ॥
चलन हलन थल वास एकता,
जात्यान्तर तें न्यारा न्यारा ॥ और ॥ १ ॥
मोह उदय रागी द्वेषी है,
क्रोधादिकका सरजन हारा।
भ्रमत फिरत चारौं गति भीतर,
जनम मरन भोगत दुख भारा ॥ और ॥ २ ॥
गुरु उपदेश लखै पद आपा,
तबहिं विभाव करै परिहारा।
है एकाकी "बुधजन" निश्चिय,
पावै शिवपुर सुखद अपारा ॥ और ॥ ३ ॥

राग 'पूरवी'

भजन बिन यौं ही जनम गमायो ॥ भजन० ॥ टेक ॥
पानी पैल्यां पाल न बांधी,
फिर पीछैं पछतायो ॥ भजन ॥ १ ॥
रामा-मोह भये दिन खोवत,
आशापाश बँधायो ।

यादि हियामैं नाम मुख, करौ निरन्तर वास ।
जौलौं वसवौ जगतमैं, भरवौ तनमैं साँस ॥९६॥
मैं अजान तुम गुन अनत, नाहिं आवै अंत ।
वंदत अंग नमाय वसु, जावजीव-परजंत ॥९७॥
हारि गये हौ नाथ तुम, अधम अनेक उधारि ।
धीरैं धीरैं सहजमैं, लीजै मोहि उबारि ॥९८॥
आप पिछान विसुद्ध ह्वै, आपा कह्यौ प्रकास ।
आप आपमैं थिर भये, वंदत बुधजन दास ॥९९॥
मन मूरति मंगल वसी, मुख मंगल तुम नाम ।
एही मंगल दीजिये, परयौ रहूं तुम धाम ॥१००॥

इति देवानुरागशतक ।

नमः सिद्धेभ्यः ।
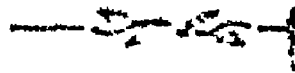
बुधजन-सतसई ।

देवानुरागशतक

दोहा ।

सन्मतिपद सन्मतिकरन, वन्दौं मंगलकार ।
वरनैं बुधजन सतसई, निजपरहितकरतार ॥ १ ॥
परमधरमकरतार हौ, भविजनसुखकरतार ।
नित वंदन करता रहूं, मेरा गहि कर तार ॥ २ ॥
पर्म परानैं आपके, पाप परानैं हैन ।
हरौ कर्मकौं सरनतैं, करौ सब तौं चैन ॥ ३ ॥
सबलायक ज्ञायक प्रभू, घायक कर्मकलेस ।
लायक जानिरै नमत हूं, पायक भये सुरेस ॥ ४ ॥

---

१ श्रीवर्धमान तीर्थंकरके चरण । २ सन्मति-अच्छी बुद्धि या सम्यग्ज्ञान करनेवाले । ३ सब तरह । ४ जानिर-जान करके । ५ सेवक ।

नमूं तोहि कर जोरिके. सिव-बनरी कर जोरि।
वरजोरी विधिकी हरो, दीजे यों वर जोरि ॥ ५ ॥
तीन कालकी खबरि तुम. तीन लोकके तात।
त्रिविधिसुद्ध वंदन करूं, त्रिविधि ताप मिटिजात ॥ ६ ॥
तीन लोकके पति प्रभू, परमातम परमेस।
मन-वच-तनतैं नमत हूं, मेटो कठिन कलेस ॥ ७ ॥
पूजूं तेरे पाँयकूं, परम पदारथ जान।
तुम पूजेतैं होत है. सेवक आप समान ॥ ८ ॥
तुम समान कोउ आन नहि, नमूं जाय कर नाय।
सुरपति नरपति नागपति, आय परें तुम पाँय ॥ ९ ॥
तुम अनंतगुन मुखथकी, कैसें गाये जात।
इंद मुनिंद फनिंद हू, गान करत थकि जात ॥ १० ॥
तुम अनंत महिमा अतुल, यों मुख करहूं गान।
सागर जल पीत न बनैं, पीजे तृपा समान ॥ ११ ॥
कथा विना कैसे रहूं, मौसॅर मिल्यौ अबार।
ऐसी विरियां टरि गया, कैसें बनत सुधार ॥ १२ ॥
जो हूं कहाऊं औरतैं, तौ न मिटे उरझार।
मेरी तौ मोपै बनै, तातैं करूं पुकार ॥ १३ ॥
आनंदघन तुम निरखिकें, हरपत है मन मोर।
दूर भयो आताप सब, सुनिकें मुखकी घोर ॥ १४ ॥

१ मोक्षरूपी दुलहनका प्राणिग्रहण कराके। २ जबर्दस्ती। ३ बरदान। ४ मुखसे। ५ अवसर—मौका। ६ इस समय।

आन थान अब ना रुचै, मन राच्यौ तुम नाथ।
रतन चिंतामनि पायकै, गहै काच को हाथ ॥ १५ ॥
चंचल रहत सदैव चित, थक्यौ न काहू ठोर।
अचल भयौ इकटक अबै, लग्यौ रांवरी[1] ओर ॥ १६ ॥
मन मोह्यौ मेरौ प्रभू, सुन्दर रूप अपार।
इन्द्र सारिखे थकि रहे, करि करि नैन हजार ॥ १७ ॥
जैसैं भानुप्रतापतैं, तम नासै सब ओर।
तैसैं तुम निरखत नस्यौ संशयविभ्रम मोर ॥ १८ ॥
धन्य नैन तुम दरस लखि, धनि मस्तक लखि पॉय।
श्रवन धन्य वानी सुनें, रसना धनि गुन गाय ॥ १९ ॥
धन्य दिवस धनि या घरी, धन्य भाग मुझ आज।
जनम सफल अब ही भयौ, वंदत श्रीमहाराज ॥ २० ॥
लखि तुम छवि चितचोरको, चकित थकित चित चोर।
आनॅद पूरन भरि गयौ, नाहिं चाहि रहि और ॥ २१ ॥
चित चातक आतुर लखै, आनॅदघन तुम ओर
वचनामृत पी तृप्त भौ, तृषा रही नहिं और ॥ २२ ॥
जैसौ वीरज[2] आपमैं, तैसौ कहूँ न और।
एक ठौर राजत अचल, व्याप रहै सब ठौर ॥ २३ ॥
यौ अद्भुत ज्ञातापनो, लख्यौ आपकी जाग।
भली बुरी निरखत रहौ, करौ नाहिं कहुं राग ॥ २४ ॥

---

१ आपकी। २ पराक्रम।

धरि विसुद्धता भाव निज, दई असाता खोय।
क्षुधा तृषा तुम परिहरी, जैसैं करिये मोय ॥ २५ ॥
त्यागि बुद्धि-परजायकूं[1], लखे सर्व समभाय[2]।
राग दोष ततखिन टरयो, राचे सहज सुभाय ॥२६॥
मो[3] ममता वमता भया, समता आतमराम।
अमर अजन्मा होय सिव, जाय लह्या विसराम ॥ २७ ॥
हेत प्रीति सबसौं तज्या, मगन निजातममाहिं।
रोग सोग अब क्यौं बनै, खाना पीना नाहिं ॥ २८ ॥
जागि रहे निज ध्यानमैं, धरि वीरज बलवान।
आवै किसि निद्रा जरा, निरखेदक भगवान ॥ २९ ॥
जातजीवतैं अधिक बल, सुथिर सुखी निजमाहिं।
वस्तु चराचर लखि लई, भय विसमै[4] यौं नाहिं ॥ ३० ॥
तत्त्वारथसरधान धरि, दीना मोह विनास।
मान हान कीना प्रगट, केवलज्ञानप्रकास ॥ ३१ ॥
अतुल सक्ति परगट भई, राजत हैं स्वयमेव।
खेद स्वेद विन थिर भये, सब देवनके देव ॥ ३२ ॥
परिपूरन हौ सब तरह, करना रह्या न काज।
आरत चिन्तातैं रहित, राजत हौ महाराज ॥ ३३ ॥
वीर्ज अनंता धरि रहे, सुख अनंतपरमान।
दरस अनंत प्रमानजुत, भया अनंता ज्ञान ॥ ३४ ॥

१ पर्यायबुद्धिको। २ समभाव—सबको एक भावसे। ३ मोह। ४ विस्मय-आश्चर्य।

अजर अमर अक्षय अनंत, अपरम अबरनवान ।
अरस अरूपी गंधबिन, चिदानंद भगवान ॥ ३५ ॥
कहत थके सुरगुरु गुनी, सोमनमें किम माय ।
पै उनमें जितने भरे, तितने कहे न जाय ॥३६॥
अरज गरजकी करत हूं, तारन तरन सु नाथ ।
भवसागरमें डूब रहूं, तारो गहकरि हाथ ॥३७॥
बीती जिती न कहि सकूं, सब भासत है तोय ।
याहीतें विनती करूं, फेरि न बीते मोय ॥३८॥
चारण वानर बाघ अहि, अंजन भील चंडार ।
जाविधि प्रभु सुखिया किया, सो ही मेरी बार ॥३९॥
हूँ अजान ज्ञान बिना, फिर्यो चतुरगति थान ।
अब चरना सरना लिया, करो कृपा भगवान ॥४०॥
जगजनकी विनती सुनो, अहो जगतगुरुदेव ।
जौलौं हूं जगमें रहूं, तौलौं पाऊं सेव ॥४१॥
तुम तो दीनानाथ हो, मैं हूं दीन अनाथ ।
अब तो ढील न कीजिये, भलो मिल गयो साथ ॥४२॥
बारबार विनती करूं, मनवचतनतें तोहि ।
परयो रहूं तुम चरनतट, सो बुधि दीजे मोहि ॥४३॥
और नाहिं जाचूं प्रभू, यो वर दीजे मोहि ।
जौलौं सिव पहुंचूं नहीं, तौलौं सेऊं तोहि ॥४४॥
या संसार असारमें, तुम ही देखे सार ।
और सकल गरें पकरि, आप निकासनहार ॥४५॥

या भववन अति सघनमैं, मारग दीखै नाहिं ।
तुम किरपा ऐसी करी, भास गयौ मनमाहिं ॥४६॥
जे तुम मारगमैं लगे, सुखी भये ते जीव ।
जिन मारग लीया नहीं, तिन दुख लीन सदीव ॥४७॥
और सकल स्वारथ-सगे, विनस्वारथ हौ आप ।
पाप मिटावत आप हौ, और बढ़ावत पाप ॥४८॥
या अद्भुत समता प्रगट, आपमाहिं भगवान ।
निंदक सहजै दुख लहै, वंदक लहै कल्यान ॥४९॥
तुम वानी जानी जिकौं[1], प्रानी ज्ञानी होय ।
सुर अरचैं संचै सुभग, कलमष[2] काटैं धोय ॥५०॥
तुम ध्यानी प्रानी भयैं, सबमैं मानी होय ।
फुनि ज्ञानी ऐसा बनै, निरख लेत सब लोय[3] ॥५१॥
तुम दरसक देखै जगत, पूजक पूजैं लोग ।
सेवै तिहि सेवैं अमर, मिलैं सुरगके भोग ॥५२॥
ज्यौं पारसतैं मिलत ही, करि ले आप प्रमान ।
त्यौं तुम अपने भक्तकौं, करि हौ आप समान ॥५३॥
जैसा भाव करै तिसा, तुमतैं फल मिलि जाय ।
जैसा तन निरखै जिसा, सीसामैं दरसाय ॥५४॥
जब अजान जान्यौ नहीं, तब दुख लह्यौ अतीव ।
अब जानै मानै हियैं, सुखी भयौ लखि जीव ॥५५॥

---

१ जिन्होंने । २ पाप । ३ लोक ।

ऐसे तौ कहन न बनै, मो उर निश्चै आय।
तातैं मोकूं चरनतट, लीजे आप बसाय ॥५६॥
तो मौ और न ना मिल्यौ, धाय थक्यौ चहुँ ओर।
ये मेरैं गाढ़ी गड़ी, तुम ही हौ चितचोर ॥५७॥
बहुत बकत डरपत रहूँ, थोरी कही सुनै न।
तरफत दुखिया दीन लखि, ढीले रहे बनै न ॥५८॥
रट्टूं रावरो सुजस सुनि, तारन-तरन जिहाज।
भव बोरत राखें रहै, तोरी मोरी लाज ॥५९॥
डूबत जलधि जिहाज गिरि, तारयौ नृप श्रीपाल।
वाही किरपा कीजिये, वोही मेरो हाल ॥६०॥
तोहि छोरिकैं आनकूं, नमूं न दीनदयाल।
जैसें तैसें कीजिये, मेरौ तौ प्रतिपाल ॥६१॥
विन मतलब बहुते अधम, तारि दये स्वयमेव।
त्यौं मेरौ कारज सुगम, कर देवनके देव ॥६२॥
निंदौ भावौ जस करौ, नाहीं कछु परवाह।
लगन लगी जात न तजी, कीजो तुम निरवाह ॥६३॥
तुमें त्यागि और न भजूं, सुनिये दीनदयाल।
महाराजकी सेव तजि, सेवै कौन कँगाल ॥६४॥
जाछिन तुम मन आ बसे, आनँदघन भगवान।
दुख दावानल मिट गयौ, कीनों अमृतपान ॥६५॥

1 आपका।

तो लखि उर हरषत रहूं, नाहिं आनकी चाह ।
दीखत सर्व समान से, नीच पुरुष नरनाह[1] ॥६६॥
तुममें मुझमें भेद यों, और भेद कछु नाहिं ।
तुम तन तजि परब्रह्म भये, हम दुखिया तनमाहिं॥६७॥
जो तुम लखि निजकौं लखै, लच्छन एक समान ।
सुथिर बनै त्यागै कुबुधि, सो ह्वै है भगवान ॥६८॥
जो तुमतैं नाहीं मिलै, चलै सुछंद मदवान ।
सो जगमैं अविचल भ्रमै, लहै दुखांकी[2] खान ॥६९॥
पार उतारे भविक बहु, देय धर्म उपदेश ।
लोकालोक निहारिकै, कीनौं सिव परवेस ॥७०॥
जो जांचै सोई लहै, दाता अतुल अछेव ।
इंद नरिंद फनिंद मिलि, करैं तिहारी सेव ॥७१॥
मोह महाजोधा प्रबल, औंधा राखत मोय ।
याकौं हरि[3] सूधा करौ, सीस नमाऊं तोय ॥७२॥
मोह-जोरकौं हरत हैं, तुम दरसन तुम वैन ।
जैसैं सर सोषन करैं, उदय होयकैं ऐनैं[4] ॥७३॥
भ्रमत भवार्णवमैं मिले, आप अपूरव मीत ।
संसौ[5] नास्या दुख गया, सहजैं भया नचीत[6] ॥७४॥
तुम माता तुम ही पिता, तुम सज्जन सुखदान ।
तुम समान या लोकमैं, और नाहिं भगवान ॥७५॥

१ नरनाथ—राजा । २ दुःखोंकी । ३ हरके—नष्ट करके । ४ सूर्य (?) । ५ संशय—शक । ६ निश्चिन्त—बेफिकर ।

जोग अजोग लखौ मती, मो व्याकुलके वैन।
करुना करिकैं कीजियौ, जैसैं तैसैं चैन ॥७६॥
मेरी अरजी तनक सी, बहुत गिनौगे नाथ।
अपनौ विरद विचारिकै, बूड़त गहियौ हाथ ॥७७॥
मेरे औगुन जिन गिनौ, मैं औगुनकौ धाम।
पतितउधारक आप हौ, करौ पतितकौ काम ॥७८॥
सुनी नहीं औजूं[1] कहूं, विपति रही है घेर।
औरनिके कारज सरे, ढील कहा[2] मो वेर ॥७९॥
सार्थवाहि विन ज्यौं पथिक, किमि पहुंचै परदेस।
त्यौं तुमतैं करि हैं भविक, सिवपुरमैं परवेस ॥८०॥
केवल निर्मलज्ञानमैं, प्रतिबिंबित जग आन।
जनम मरन संकट हरयौ भये आप रतध्यान ॥८१॥
आपमतलबी ताहितैं, कैसैं मतलब होय।
तुम विनमतलब हौ प्रभू, कर हौ मतलब मोय ॥८२॥
कुमति अनादी संगि लगी, मोह्यौ भोग रचाय।
याकौं कौलौं दुख सहूं, दीजै सुमति जगाय ॥८३॥
भववनमाहीं भरमियौ, मोह नींदमैं सोय।
कर्म ठिगौरे[3] ठिगत हैं, क्यौं न जगावौ मोय ॥८४॥
दुख दावानलमैं जलत, घनै कालकौ जीव।
निरखत ही समता मिली, भली सुखांकी सींव[4] ॥८५॥

१ अजौं–अभीतक। २ कब तक। ३ ठग। ४ सीमा–हद्द।

मो[1] ममता दुखदा तिनैं, मानत हूॅ हितवान ।
मो मनमाहीं उलटि या, सुलटावो भगवान ॥८६॥
लाभ सर्व साम्राज्यका (?) वेदयता (?) तुम भक्त ।
हित अनहित समझै नहीं, तातैं भये असक्त ॥८७॥
विनयवान सर्वस लहै, दहै गहै जो गर्व ।
आप आपमैं हौ तदपि, व्याप रहे हौ सर्व ॥८८॥
मैं मोही तुम मोह विन, मैं दोपी तुम सुद्ध[3] ।
धन्य आप मो घट वसे, निरख्यौ नाहिं विरुद्ध ॥८९॥
मैं तौ कृतकृत अब भया, चरन सरन तुम पाय ।
सर्व कामना सिद्ध भई, हर्ष हियै न समाय ॥९०॥
मोहि[2] सतावत मोह जुर, विषम अनादि असाधि ।
वैद अतार हकीम तुम, दूरि करौ या व्याधि ॥९१॥
परिपूरन प्रभु विसरि तुम, नमूं न आन कुठोर ।
ज्यौं त्यौं करि मो तारिये, विनती करूं निहोर ॥९२॥
दीन अधम निरबल रटै, सुनिये अधम उधार ।
मेरे औगुन जिन लखौ, तारौ विरद चितार ॥९३॥
करुनाकर परगट विरद, भूले बनि है नाहिं ।
सुधि लीजै सुब[3] कीजिये, दृष्टि धार मो-माहिं ॥९४॥
एही वर मो दीजिये, जांचूं नाहिं कुछ और ।
अनिमिष दृग निरखत रहूं, सान्त छबी चितचोर ॥९५॥

१ मोह । २ मुझको । ३ शुद्ध ।

यादि हियामैं नाम मुख, करौ निरन्तर वास।
जौलौं वसवौ जगतमैं, भरवौ तनमें सॉस ॥९६॥
मैं अजान तुम गुन अनत, नाहीं आवै अंत।
वंदत अंग नमाय वसु, जावजीव-परजंत ॥९७॥
हारि गये हौ नाथ तुम, अधम अनेक उधारि।
धीरैं धीरैं सहजमैं, लीजै मोहि उवारि ॥९८॥
आप पिछान विसुद्ध ह्वै, आपा कह्यौ प्रकास।
आप आपमैं थिर भये, वंदत बुधजन दास ॥९९॥
मन मूरति मंगल वसी, मुख मंगल तुम नाम।
एही मंगल दीजिये, परचौ रहूं तुम धाम ॥१००॥

इति देवानुरागशतक।

सुभाषितनीति ।

अलपथकी फल दे घना, उत्तम पुरुष सुभाय ।
दूध झरै तृनकौं चरै, ज्यौं गोकुलकी गाय ॥१॥
जेताका तेता करै, मध्यम नर सनमान ।
घटै बढ़ै नहिं रंचहू, धरयौं कोठरै धान ॥२॥
दीजै जेता ना मिलै, जघन पुरुषकी वान ।
जैसे फूटै घट धरयौं, मिलै अलप पय थान ॥३॥
भला कियै करि है बुरा, दुर्जन सहज सुभाय ।
पय पायैं[1] विष देत है, फणी[2] महा दुखदाय ॥४॥
सहैं निरादर दुरवचन, मार दण्ड अपमान ।
चोर चुगल परदाररत, लोभि लबार अजान ॥५॥
अमर हारि सेवा करैं, मानसकी कहा बात ।
जो जन सील संतोषजुत, करै न परकी घात ॥६॥
अगनि चोर भूपति विपति, डरत रहै धनवान ।
निर्धन नींद निसंक ले, मानै काकी हान ॥७॥
एक चरन हू नित पढै, तौ काटै अज्ञान ।
पनिहारीकी लेजसौं[3], सहज कटै पाषान ॥८॥
पतिव्रता सतपुरुषकी, गाढ़ा धीर सुभाव ।
भूख सहै दारिद सहै, करै न हीन उपाव ॥९॥
वैर करौ, वा हित करौ, होत सबलतैं हारि ।

---

१ पिलानेसे । २ सर्प । ३ रस्सीसे ।

मीत भयें गोरव घटै, शत्रु भये दे मारि ॥१०॥
जाकी प्रकृति कठोर अति, मूलकन होय लखें न।
भजे सदा आधीन परि, तजे क्षुद्रमें मन ॥११॥
सिथिल वैन डाडस विना, ताकी पैठ बनै न।
ज्यों प्रसिद्ध रितु सरदको, अम्बर नेकु अरै न ॥१२॥
जतनयत्नको नरको मिलै, विना जतन ले आन।
वासन भरि नर पीत हैं, पशु पीवें सब थान ॥१३॥
झूठी मीठी तनकसी, अधिकी मानें कौन।
अनसरतें बोलो इसी, ज्यों आटेमें नौन ॥१४॥
ज्वारी विभिचारीनितें, डरें निकसतें गैल।
मालनि ढांके टोकरा, छूटे लखिके छैल ॥१५॥
औसर लखिये बोलिये, जथाजोगता बैन।
सावन भादों बरसतें, सब ही पावें चैन ॥१६॥
बोलि उठै औसर विना, ताका रहै न मान।
जैसें कातिक बरसतें, निंदें सकलैं जहान ॥१७॥
लाज काज खरचै दरब, लाज काज संग्राम।
लाज गयें सरवस गयो, लाज पुरुषकी माम (?) ॥१८॥
आरंभ्यो पूरन करें, कहा वचन निरवाह।
धीर सलज सुन्दर रमें (?), येते गुन नरमांह ॥१९॥

---

१ काम नहीं चल सकता हो, तो। २ "सारे थान" ऐसा भी पाठ है।

उद्यम साहस धीरता, पराक्रमी मतिमान ।
एते गुन जा पुरुषमैं, सो निरभै बलवान ॥२०॥
रोगी भोगी आलसी, वेहमी[1] हठी अज्ञान ।
ये गुन दारिद्वानकै, सदा रहत भयवान ॥२१॥
अछती[2] आस विचारिकैं, छती देत छिटकाय ।
अछती मिलवौ हाथ नहिं, तब कोरे रह जाय ॥२२॥
विनय भक्ति कर सबलकी, निबल गोरै[3] सम भाय ।
हितू होय जीना भला, वैर सदा दुखदाय ॥२३॥
नदीतीरको रूखरा[4], कैरि विनु अंकुश नार ।
राजा मंत्रीतैं रहित, बिगरत लगै न वार ॥२४॥
महाराज महावृक्षकी, सुखदा सीतल छाय ।
सेवत फल लाभै न तौ, छाया तौ रह जाय ॥२५॥
अति खानेतैं रोग है, अति बोलैं ज्यां[6] मान ।
अति सोयैं धनहानि है, अति मति करौ सँयान ॥२६॥
झूठ कपट कायर अधिक, साहस चंचल अंग ।
गान सलज आरंभनिपुन, तिय न तृपति रतिरंग ॥२७॥
दुगुण छुधा लज चौगुनी, षष्ठ गुनौ विवसाय ।
काम वसु गुनौ नारिकैं, वरन्यौ सहज सुभाय ॥२८॥
पतिच्चितहित अनुगामिनी, सलज सील कुलपाल ।

---

१ शक्की—सन्देह करनेवाला । २ जो मौजूद नहीं । ३ गायके । ४ वृक्ष । ५ हाथी । ६ जाता है । ७ सुजान ।

या लक्ष्मी जा घर बसै, सो है सदा निहाल ॥२९॥
क्रूर कुरूपा कलहिनी, करकश बैन कठोर ।
ऐसी भृतनि भोगिवो बसिवो नरकनि घोर ॥३०॥
बरजै कुलकी बालिका, रूप कुरूप न जोवै ।
हर्षी अतुली परणतां, हीन कहै नव कोय ॥३१॥
विपति धीर रन विक्रमी, सपति क्षमा दयाल ।
कलाकुशल कोविद कवी, न्याय नीति भूपाल ॥३२॥
मांस झूठ भाषै गुहिन, हिंसा दयाभिलाख ।
अति आमद अति व्यय करै, ये राजनिकी साख ॥३३॥
सुजन सुखी दुरजन डरै, करै न्याय धन संच ।
प्रजा पलै पैर ना करै, श्रेष्ठ नृपति गुन पंच ॥३४॥
काना टूंडा पांगुला, वृद्ध कुबग अंध ।
बेवारिस पालन करै, भूपति रचि परबंध ॥३५॥
कृपनबुद्धि अन्युग्रचित, झूठ कपट अदयाल ।
ऐसा स्वामी सेवतें, कहै न होय निहाल ॥३६॥
हंकारी व्यसनी हठी, आरसैवान अजान ।
भृत्य न ऐसा राखिये, करै मनोरथहान ॥३७॥
नृप चालै ताही चलन, प्रजा चलै वा चाल ।
जा पथ जा गजराज तहँ, जात जूथ गजबाल ॥३८॥

---

१ देखकर । २ पक्ष । ३ कमी । ४ अहंकारी—घमंडी । ५ आलसवान । ६ दास—नौकर । ७ वह । ८ समूह ।

सूर सुधीर पराक्रमी, सब वाहनअसवार ।
जुद्धचतुर साहसि मधुर, सेनाधीस उदार ॥३९॥
निरलोभी सांचौ सुघर, निरालसी मति धीर ।
हुकमी उद्यमी चौकसी, भंडारी गंभीर ॥४०॥
निरलोभी सांचौ निडर, सुघ हिमावकरवार ।
स्वामिकामनिरआलसी, नौमंद्री (?) हितकार ॥४१॥
दरस परस पूंछ करै, निरखे रोग र आय ।
पथ्यापथ्यमैं निपुन चिर, वैद्य चतुर सुखदाय ॥४२॥
शुक्त सौच पाचक मधुर, देश काल वय जोग ।
सूपकार भोजनचतुर, बोलै सत्य मनोग ॥४३॥
मूढ़ दरिद्री आयु लघु, व्यसनी लुब्ध कठूर ।
नाधिपती (?) नहिं दीजिये, जाका मन मगरूर ॥४४॥
सीख सरलकौं दीजिये, विकट मिलें दुख होय ।
वये सीख कपिकौं दई, दिया घौंसला खोय ॥४५॥
अपनी पखें नहिं तोरिये, रचि गहिये करि चाहि ।
ज्यौं तंदुल तुस सहित, तुस विन ऊगै नाहिं ॥४६॥
अति लोलुप आसक्तकैं, विपदा नाहीं दूर ।
मीन मरै कंटक फँसै, दौरि मांस लखि क्रूर ॥४७॥
आवत उठि आदर करै, बोलै मीठे वैन ।
जातैं हिलमिल बैठना, जिय पावै अति चैन ॥४८॥

---

१ आयु-उमर । २ रसोइया । ३ बयानामके पक्षीने । ४ पक्ष ।

भला बुरा लखिये नहीं, आये अपने द्वार ।
मधुर बोल जस लीजिये, नातर[1] अजस तयार ॥४९॥
सेय जती कै भूपती, वसि वन कै पुर बीच ।
या विन और प्रकारतें, जीवांतै[2] वर मीचै[3] ॥५०॥
घनौ सुलप आरंभ रचि, चिंग नाहिं चित धीर ।
सिंह उठकै ना मुरै, करै पराक्रम वीर ॥५१॥
इंद्री पंच सकोचिकै, देश काल वय पेखि ।
बकवत[4] हित उद्यम करै, जे हैं चतुर विसेखि ॥५२॥
प्रातः उठि रिपुतें लरै, बांटै बंधुविभाग ।
रमनि रमनमें प्रीति अति, कुरकट[5] ज्यौं अनुराग ॥५३॥
गूढ मईथुन[6] चख चपल, संग्रह सजै निधान ।
अविसासी[7] परमादच्युत, वायस ज्यौं मतिवान ॥५४॥
बहुभ्यासी संतोषजुत, निद्रा स्वलप सचेत ।
रन प्रवीन मन स्वान ज्यौं, चितवत स्वामी हेत॥५५॥
वहै भार ज्यौं आदरयौ, सीत उष्ण क्षत देह ।
सदा संतोषी चतुर नर, ये रासब[8] गुन लेह ॥५६॥
टोटा लाभ संताप मन, घरमैं हीन चरित्र ।
भयौ कदा अपमान निज, भाषै नाहिं विचित्र[9] ॥५७॥

---

१ नहीं तो । २ जीनेमे । ३ मृत्यु । ४ बगुलेके समान । ५ कुक्कुट–मुर्गा। ६ मैथुन । ७अविश्वासी । ८ रासभ–गधा। ९ यहां विचित्रसे विचक्षण—बुद्धिमानका अभिप्राय होगा।

कोविद रहैं संतोषचित, भोजन धन निज दार।
पठन दान तप करनमैं, नाहीं तृपति लगार ॥५८॥
विद्या संग्रह धान धन, करत हार व्योहार।
अपन प्रयोजन साधतैं, त्यागैं लाज सुधार(१) ॥५९॥
दोय विप्रमधि होम पुनि, सुंदर जुग भरतार।
मंत्री नृप मसलत करत, जातैं होत विगार ॥६०॥
वारि अगनि तिय मूढजन, सर्प नृपति रुज[2] देव।
अंत प्रान नासै तुरत, अजतन[3] करते सेव ॥६१॥
गज अंकुश हय चावुका, दुष्ट खड़ग गहि पान।
लकरीतैं शृंगीनकूं[4], वसि राखैं बुधिवान ॥६२॥
वसि करि लोभी देय धन, मानीकौं कर जोरि।
मूरख जन विकथा वचन, पंडित सांच निहोरि ॥६३॥
भूपति वसि ह्वै अनुग वन, जोवत तन धन नार।
ब्राह्मण वसि ह्वै वेदतैं, मिष्टवचन संसार ॥ ६४॥
अधिक सरलता सुखद नहिं, देखो विपिन[5] निहार।
सीधे विरवा[6] कटि गये, बांके खरे हजार ॥६५॥
जो सपूत धनवान जो, पनजुत हो विद्वान।
सब बांधव धनवानके, सरव मीत धनवान ॥६६॥

१ सुधार-यहां सुधी वा बुद्धिमानका मतलब होना चाहिये। २ रोग। ३ अयत्नसे-विना विचारे। ४ सींगवालोको। ५ जंगल। ६ वृक्ष।

नहिं मान कुलरूपको, जगत मान धनवान।
लखि चँडालके विपुल धन, लोक करैं सनमान॥६७॥
संपतिके सब ही हितू, विपदामें सब दूर।
सूखो सर पंछी तजैं, सेवैं जलते पूर॥६८॥
तजैं नारि सुत बंधु जन, दारिद आयें साथि।
फिरि आमद लखि आयकैं, मिलि हैं बांथांबंथि[1]॥६९॥
संपति साथ बढ़ै बढ़ै, सरत बुधि बल धीर।
ग्रीषम सर सोभा हरैं, सोहै वरसत नीर॥७०॥
पटभूषन सोहै सभा, धन दै सोहै नारि।
खेती होय दरिद्रतें (?), सज्जन सो मनुहार (?)॥७१॥
धर्महानि संक्लेश अति, शत्रुविनयकरि होय।
ऐसा धन नहिं लीजिये, भूखे रहिये सोय॥७२॥
धीर सिथिल उदमी चपल, मूरख सहित गुमान।
दोष धनदके गुन कहैं, निलज सरलचितवान॥७३॥
काम छोरि सौ जीमजे, न्हाजे छोरि हजार।
लाख छोरिकैं दान करि, जपिजे वारंवार॥७४॥
गुरु राजा नट भट वनिक, कुटनी गनिका थान।
इनतें माया मति करो, ये मायाकी खान॥७५॥
खोटीसंगति मति करो, पकरौ गुरुका हाथ।
करो निरन्तर दान पुनि, लखौ अथिर सब साथ॥७६॥

---

१ आलिंगन करके।

नृप सेवातैं नष्ट दुज, नारि नष्ट विन सील।
गनिका नष्ट संतोषतैं, भूप नष्ट चित ढील ॥७७॥
नाहीं तपसी मूढ़ मन, नहीं सूर कृतवान।
नहीं सती तिय मद्यपा, फुनि जो गान सुभाव ॥७८॥
सुतको जनम विवाहफल, अतिथिदान फल गेह।
जन्म सुफल गुरुतैं पठन, तजिवो राग सनेह ॥७९॥
जहां तहां तिय व्याहिये, जहां तहां सुत होय।
एकमात[1] सुत भ्रात बहु, मिलै न दुरलभ सोय ॥८०॥
निज भाई निरगुन भलो, पर गुनजुत किहि काम।
आंगन तरु निरफल जदपि, छाया राखै धाम ॥८१॥
निसिमें दीपक चंद्रमा, दिनमैं दीपक सूर।
सर्व लोक दीपक धरम, कुल दीपक सुत सूर ॥८२॥
सीख दई सरधै नहीं, करै रैन दिन सोर।
पूत नहीं वह भूत है, महापापफल घोर ॥८३॥
सुसक[2] एक तरु सघनवन, जुरतहिं[3] देत जराय।
त्यौं ही पुत्र पवित्र कुल, कुबुधि कलंक लगाय ॥८४॥
तिसना तुहि प्रनपति करूं, गौरव देत निवार।
प्रभु[4] आय वावनें[5] भये, जाचक वलिके द्वार ॥८५॥
मिष्ट वचन धन दानतैं, सुखी होत है लोक।
सम्यग्ज्ञान प्रमान सुनि, रीझत पंडित थोक ॥८६॥

---

१ एक माके पेटसे उत्पन्न हुए भाई। २ शुष्क—सूखा। ३ जुड़ते ही। ४ विष्णु भगवान। ५ वामन-ठिगने।

अगनि काठ सरिता उदधि, जीवनतं जमराज ।
मृग नैननि कामी पुरुष, तृपति न होत मिजाज॥८७॥
दारिदजुत हू महंत जन, करवे लायक काज ।
दंतभंग हस्ती जदपि, फोरि करत गिरिराज ॥८८॥
दई होत प्रतिकूल जब, उद्यम होत अकाज ।
मूस पिटारो काटियो, गयो सरप करि खाज ॥८९॥
बाह्य नरम भीतर नरम, सज्जन जनकी बान ।
बाह्य नरम भीतर कठिन, बहुत जगतजन जान ॥९०॥
चाहै कछु है जाय कछु, हारे विबुध विचारि ।
होतव्यतं हो जाय है, बुद्धि करम अनुसारि ॥ ९१ ॥
जाके सुखमें सुख लहैं, विप्र मित्र कुल भ्रात ।
ताहीको जीवो सुफल, पिटभरकी का बात ॥९२॥
हार होहिंगे सुभट सब, करि करि थके उपाय ।
तिसना खानि अगाध है, क्योंहू भरी न जाय ॥९३॥
भोजन गुरुअवसेस जो, ज्ञान वहै विन पाप ।
हित परोख कारज किये, धरमी रहितकलाप ॥९४॥
काल जिवावै जीवको, काल करै संहार ।
काल सुवाय जगाय है, काल चाल विकराल ॥९५॥
काल करा दे मित्रता, काल करा दे रार ।
कालखेप पंडित करैं, उलझै निपट गँवार ॥९६॥

१ खा गया । २ पंडित । ३ होतव्यसे-होनहारसे । ४ पेट भरनेवाले-पेटार्थू । ५ कलापरहित-बकवादरहित थोड़ा बोलनेवाला ।

सांप दर्श दे छिप गया, वैद थके लखि पीर ।
वैरी करतैं छुटि गया, कौन धरि सकै धीर ॥९७॥
वलधंनमैं सिंह न लसैं, ना कागनमैं हंस ।
पंडित लसैं न मूढ़मैं, हयै खरमें न प्रशंस ॥९८॥
हय गय लोहा काठि पुनि, नारी पुरुप पखान ।
वसन रतन मोतीनमैं, अंतर अधिक विनान ॥९९॥
सत्य दीप वाती क्षमा, सीय तेल संजोय ।
निपट जतनकरि धारिये, प्रतिबिंवित सव होय॥१००॥
परधन परतिय ना चितै, संतोपामृत राचि ।
ते सुखिया संसारमैं, तिनकौं भय न कदाचि ॥१०१॥
रंक भूपपदवी लहै, मूरखसुत विद्वान ।
अंधा पावै विपुल धन, गिनै तृना ज्यौं आन ॥२॥
विद्या विपम कुशिष्यकौं, विप कुपथीकौं व्याधि ।
तरुनी विष सम वृद्धकौं, दारिद प्रीति असाधि ॥३॥
सुचि असुची नाहीं गिनै, गिनै न न्याय अन्याय ।
पाप पुन्यकौं ना गिनै, भूसा मिलै सु खाय ॥ ४ ॥
एक मातके सुत भये, एक मते नहिं कोय ।
जैसैं कांटे वेरके, वांके सीधे होय ॥५॥
देखि उठै आदर करै, पूछै हिततैं वात ।
जाना आना ताहिका, नित नवहित सरसात ॥६॥

---

१ वैलोंमें । २ एक प्रतिमें 'पुत्रविना नहि वंश' पाठ है ।

आदि अलप मधिमें घनी, पद पद वधती जाय ।
सरिता ज्यों सतपुरुपहित, क्यों हू नाहिं अघाय ॥७॥
गुहि (?) कहना गुहि (?) पूछना, देना लेना रीति ।
खाना आप खवावना, पटविधि वधि है प्रीति ॥८॥
विद्या मित्र विदेशमें, धर्म मीत है अंत ।
नारि मित्र घरके विषै, व्याधी ओपधि मिंत ॥९॥
नृपहित जो पिरजा[1] अहित, पिरजा हित नृपरोप ।
दोऊ सम साधन करै, सो अमात्य[2] निरदोप ॥१०॥
पाय चपल अधिकारकों, शत्रु मित्र परवार ।
सोप तोप पोपे विना, ताको है धिक्कार ॥११॥
निकट रहै सेवा करै, लपटत होत खुस्याल ।
दीन हीन लखते नहीं, प्रमदा[3] लता भुआल[4] ॥१२॥
दुष्ट होय परधान जिहिं, तथा नाहिं परधान ।
ऐसा भूपति सेवतां, होत आपकी हान ॥१३॥
पराक्रमी कोविद शिलपि[5], सेवाविद विद्वान ।
एते सोहैं भूप घर, नहिं प्रतिपालैं आन ॥१४॥
भूप तुष्ट ह्वै करत है, इच्छा पूरन मान ।
ताके काज कुलीन हू, करत प्रान कुरवान ॥१५॥
बुद्धि पराक्रम वपु वली, उद्यम साहस धीर ।
संका मानैं देव हू, ऐसा लखिकै वीर ॥१६॥

---

१ प्रजा । २ मंत्री । ३ स्त्री । ४ भूपाल-राजा । ५ शिल्पी-कारीगर ।

रसना रखि मरजादि तू, भोजन वचन प्रमान ।
अति भोगति अति बोलतैं, निहचै होहै हान ॥१७॥
वन वसि फल भखिवौ भलौ, मीनत भली अजान ।
भलौ नहीं बसिवौ तहां, जहां मानकी हान ॥१८॥
जहां कछू प्रापति नहीं, है आदर वा धाम ।
थोरे दिन रहिये तहां, सुखी रहैं परिनाम ॥१९॥
उद्यम करवौ तज दियौ, इंद्री रोकी नाहिं ।
पंथ चलैं भूखा रहैं, ते दुख पावं आहिं (?) ॥२०॥
समय देखिकै बोलना, नातरि आछी मौन ।
मैना सुख पकरै जगत, बुगला पकरै कौन ॥२१॥
जाका दुरजन क्या करै, छमा हाथ तरवार ।
विना तिनांकी भूमिपर, आगि बुझै लगि वार ॥२२॥
बोधत शास्त्र सुबुधि सहित, कुबुधी बोध लहै न ।
दीप प्रकास कहा करै, जाके अंधे नैन ॥२३॥
परउपदेस करन निपुन, ते तौ लखे अनेक ।
करैं समिक बोलैं समिक, जे हजारमैं एक ॥२४॥
विगड़ै करैं प्रमादतैं, विगड़ै निपट अग्यान ।
विगड़ै वास कुवासमैं, सुधरै संग सुजान ॥२५॥
वृद्ध भये नारी मरै, पुत्र हाथ धन होत ।
वंधू हाथ भोजन मिलै, जीनैतैं वर मौत ॥२६॥

१ मिहनत-मजदूरी । २ बकपच्छी । ३ तृणाकी । ४ सम्यक्-उत्तम ।

दारू धात पखानमैं, नाहिं विराजै देव।
देवभाव भायें भला, फलै लाभ स्वयमेव ॥२७॥
तिसना दुखकी खानि है, नंदनवन संतोष।
हिंसा बँधकी दायिनी, दया दायिनी मोष ॥२८॥
लोभ पापको बाप है, क्रोध क्रूर जमराज।
माया विषकी वेलरी, मान विषम गिरिराज ॥२९॥
विवसाईतें दूर क्या, को विदेश विद्वान।
कहा भार समरत्थको, मिष्ट कहैं को आन ॥३०॥
कुलकी सोभा सीलतें, तन सोहै गुनवान।
पढ़िवो सोहै सिधि भयें, धन सोहै दै दान ॥३१॥
असंतोषि दुज भ्रष्ट है, संतोषी नृप हान।
निरलज्जा कुलतिय अधम, गनिका सलज अजान ॥३२॥
कहा करै मूरख चतुर, जो प्रभु है प्रतिकूल।
हरि हलै हारे जतनकरि, जरे जँदू निरमूल ॥३३॥
खेती लखिये प्रात उठि, मध्यानै लखि गेह।
अपरान्है धन निरखिये, नित सुत लखि करि नेह ॥३४॥
विद्या दयें कुशिष्यकों, करै सुगुरु अपकार।
लाख लँडावो भानजा, खोसि लेय अधिकार ॥३५॥

---

१ लकड़ी। २ बंधकी करनेवाली। ३ वल्लरी-बेल। ४ व्यवसायी-उद्यमी। ५ मिष्टवचन बोलनेसे कोई अन्य नहीं रहता—सब अपने हो जाते हैं। ६ बलदेवजी। ७ यादव-वंशी। ८ प्यार करो। ९ छीन लेय।

ना जानैं कुलशीलके, ना कीजै विसवास ।
तात मात जातैं दुखी, ताहि न रखिये पास ॥३६॥
गनिका जोगी भूमिपति, वानर अहि मंजार[1] ।
इनतैं राखैं मित्रता, परै प्रान उरझार ॥३७॥
पट पनही बहु खीर गो, ओषधि बीज अहार ।
ज्यौं लाभै त्यौं लीजिये, कीजै दुख परिहार ॥३८॥
नृपति निपुन अन्यायमैं, लोभनिपुन परधान[2] ।
चाकर चोरीमैं निपुन, क्यौं न प्रजाकी हान ॥३९॥
धन कमाय अन्यायका, वर्ष[3] दश थिरता पाय ।
रहै कदा षोड़स वरस, तौ समूल नस जाय ॥४०॥
गाड़ी तरु गो उदधि वन, कंद कूप गिरराज ।
दुरविषमैं नो जीवका, जीवो करै इलाज ॥४१॥
जातैं कुल शोभा लहै, सो सपूत वर एक ।
भार भरै रोड़ी[4] चरै, गर्दभ भये अनेक ॥४२॥
दूधरहित घंटासहित, गाय मोल क्या पाय ।
त्यौं मूरख आँटोप[5]करि, नहिं सुघर ह्वै जाय ॥४३॥
कोकिल प्यारी वैनतैं, पतिअनुगामी नार ।
नर वरविद्याजुत सुघर, तप वर क्षमाविचार ॥४४॥
दूरि वसत नर दूत[6] गुन, भूपति देत मिलाय ।
ढांकि दूरि रखि केतकी, बास प्रगट ह्वै जाय ॥४५॥

१ मार्जार-बिल्ली । २ प्रधान-मंत्री । ३ वर्ष-साल । ४ घूरेपर । ५ आडम्बर-ठाठ बाट । ६ गुणरूपी दूत ।

सुसक साकका असन वर, निरजनवन वर वास।
दीन-वचन कहिवो न वर, जौ लौं तनमें साँस ॥४६॥
एकाक्षरदातार गुरु, जो न गिनै विनज्ञान।
सो चँडाल भवको लहै, तथा होयगा स्वान ॥४७॥
सुख दुख करता आन हैं, यौं कुबुद्धिश्रद्धान।
करता तेरे कृतकरम, मेटै क्यौं अज्ञान ॥४८॥
सुख दुख विद्या आयु धन, कुल बल वित अधिकार।
साथ गर्भमें अवतरें, देह धरी जिहि वार ॥४९॥
वन रन रिपु जल अगनि गिरि, रुज निद्रा मद मान।
इनमें पुन रक्षा करै, नाहीं रक्षक आन ॥५०॥
दुराचारि तिय कलहिनी, किंकर क्रूर कठोर।
सरप साथ वसिवो सदन, मृत समान दुख घोर ॥५१॥
संपति नरभव ना रहै, रहै दोपगुनवात।
है जु वनमें वासना, फूल फूलि झर जात ॥५२॥
एक त्यागि कुल राखिये, ग्राम राख कुल तोरि।
ग्राम त्यागिये राजहित, धर्म राख सव छोरि ॥५३॥
नहिं विद्या नहिं मित्रता, नाहीं धन सनमान।
नहीं न्याय नहिं लाज भय, तजौ वास ता थान ॥५४॥
किंकर जो कारज करै, बांधव जो दुख साथ।
नारी जो दारिद सहै, प्रतिपालै सो नाथ ॥५५॥

१ सूखा। २ पुण्य।

नदी नखी[1] श्रृंगी[2]निमैं, शस्त्रपानि[3] नर नारि।
बालक अर राजान ढिग, वसिये जतन विचारि ॥५६॥
कामीकौं कामिन मिलन, विभवमांहि रुचिदान[4]।
भोजशक्ति भोजन विविध, तप अत्यंत फल जान॥५७॥
किंकर हुकमी सुत विबुध[5], तिय अनुगामिनि जास।
विभव सदन नहिं रोग तन, ये ही सुरगनिवास ॥५८॥
पुत्र वहै पितुभक्त जो, पिता वहै प्रतिपाल।
नारि वहै जो पतिव्रता, मित्र वहै दिल माल ॥५९॥
जो हँसता[6] पानी पियै, चलता खावै खान।
द्वै बतरावत जात जो, सो सठ ढीट अजान ॥६०॥
तेता आरंभ ठानिये, जेता तनमैं जोर।
तेता पाँव पसारिये, जेती लांबी सोर ॥६१॥
बहुते परप्रानन हरैं, बहुते दुखी पुकार।
बहुते परधन तिय हरैं, विरले चलैं विचार ॥६२॥
कर्म धर्म विरले निपुन, विरले धन दातार।
विरले सत बोलैं खरे, विरले परदुखटार ॥६३॥
गिरि गिरि प्रति मानिक नहीं, वन वन चंदन नाहिं।
उदधि[7] सारिसे साधुजन, ठौर ठौर ना पाहिं ॥६४॥

---

१ नखवाले। २ सींगवाले। ३ हाथमे हथियार रखनेवाला मनुष्य। ४ दान करनेमे रुचि। ५ पंडित। ६ यह "हसन्न जल्पेत्" का अनुवाद ठीक नहीं हुआ, "जो हँसता भाषण करै" ऐसा ठीक होता। ७ समुद्रसरीखे गंभीर।

परघरवास विदेसपथ, मूरख मीत मिलाप ।
जोवनमाहिं दरिद्रता, क्यों न होय संताप ॥६५॥
धाम पराया वस्त्र पर, परसय्या परनारि ।
परघर वसिवो अधम ये, त्यागें विबुध विचारि ॥६६॥
हुनर[1] हाथ अनालसी, पढ़िवो, करिवो मीत ।
सील, पंच निधि ये अखय. गखे रहो नचीत[2] ॥६७॥
कष्ट समय रनके समय, दुरभिख[3] अरु भय घोर ।
दुरजनकृत उपसर्गमें, बचे विबुध कर जोर ॥६८॥
धरम लहैं नहिं दुष्टचित, लोभी जस किम पाय ।
भागहीनको लाभ नहिं, नहिं ओषधि गतै-आय[4] ॥६९॥
दुष्ट मिलत ही साधुजन, नहीं दुष्ट ह्वै जाय ।
चंदन तरुको सर्प लगि, विष नहिं देत बनाय ॥७०॥
सोक हरत है बुद्धिको, सोक हरत है धीर ।
सोक हरत है धर्मको, सोक न कीजे वीर ॥७१॥
अस्व सुपत[5] गज मस्त ढिग, नृप भीतर रनवास ।
प्रथम व्यायली गाय ढिग, गये प्रानका नास ॥७२॥
भूपति विसनी पाहुना, जाचक जड़ जमराज ।
ये परदुख जोवें[6] नहीं, कीयो चाहैं काज ॥७३॥

---

१ कलाकौशल्य । २ निश्चिन्त-बेफिकर । ३ दुर्भिक्ष-अकाल । ४ गतायु-जिसकी आयु बाकी न रही हो, उसको । ५ सोता हुआ (?) । ६ देखते नहीं हैं ।

मिनखे-जनम ले ना किया, धर्म न अर्थ न काम।
सो कुचे अजके कंठमें, उपजे गये निकाम ॥७४॥
सरता नहिं करता रहो, अर्थ धर्म अर काम।
नित तड़का द्वै घटि रह्या, चितवो आतमराम ॥७५॥
को स्वामी मम मित्र को, कहा देशमें रीत।
खरच किता आमद किती, सदा चितवो मीत ॥७६॥
वमन करेतें कफ मिटै, मरदन मेटै वात।
स्नान कियेतें पित मिटै, लंघनतें जुर जात ॥७७॥
कोढें मांस घृत जुरविषें, सूल द्विदल घो टार।
दृग-रोगी मैथुन तजो, नवो धान अतिसारें ॥७८॥
अनदाता साता विपत, हितदाता गुरुज्ञान।
आप पिता फुनि धायपति, पंच पिता पहिचान ॥७९॥
गुररानी नृपकी तिया, बहुरि मित्रकी जोयं।
पतिनी-मा निजमातजुत, मात पांच विधि होय ॥८०॥
घसन छेद ताड़न तपन, सुवरनकी पहिचान।
दयासील श्रुत तप गुननि, जान्या जात सुजान ॥८१॥

---

१ मनुष्य जन्म। २ बकरीके गलेके स्तन। ३ सवेरे-दो घड़ी रात रहने पर। ४ कोढ रोगमे मास खाना। ५ शूल रोगमे दो दालोंवाला अन्न खाना। ६ नेत्ररोगी। ७ अतीसार रोगमे अर्थात् दस्तोकी बीमारीमें नया अन्न। ८ गुरानी-गुरुकी स्त्री। ९ स्त्री।

जाप होम पूजन क्रिया, वेदतत्त्वश्रद्धान।
करन करावनमें निपुन, दुजे-पुरोत गुनवान ॥८२॥
भली बुरी चितमें बसत, निरखत ले उर धार।
सोमवदन वक्ता चतुर, दूत स्वामिहितकार ॥८३॥
याहीतें सुकुलीनता, भूप करैं अधिकार।
आदि मध्य अवसानमें, करते नाहिं विकार ॥८४॥
दुष्ट तियाका पोषना, मूरखकों समझाय।
वैरीतें कारज परें, कौन नाहि दुख पाय ॥८५॥
विपताकों धन राखिये, धन दीजे राखि दार।
आतमहितकों छांडिये, धन दारा परिवार ॥८६॥
दारिदमें दुरविसनमें, दुरभिख फुनि रिपुघात।
राजद्वार समसांनमें, साथ रहै सो भ्रात ॥८७॥
सर्प दुष्ट जन दो बुरे, तामें दुष्ट विसेख।
दुष्ट जतनका लेख नहिं, सर्प जतनका लेख ॥८८॥
नाहीं धन भूषन वसन, पंडित जदपि कुरूप।
सुघर सभामें यों लसैं, जैसें राजत भूप ॥८९॥
स्नान दान तीरथ किये, केवल पुन्य उपाय।
एक पिताकी भक्तितें, तीन वर्ग मिलि जाय ॥९०॥
जो कुदेवको पूजिकें, चाहै शुभका मेल।
सो बालूको पेलिकें, काढ्या चाहै तेल ॥९१॥

१ द्विज पुरोहित। २ स्त्री। ३ स्मशानमे-मुर्दखानेमें।
४ तीन पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम। ५ पुण्य।

धिक विधवा भूषन सजै, वृद्ध रसिक धिक होय।
धिक जोगी भोगी रहै, सुत धिक पढ़ै न कोय ॥९२॥
नारी धनि जो सीलजुत, पति धनि रति निजनार।
नीतिनिपुन जो नृपति धनि, संपति धनि दातार ॥९३॥
रसना रखि मरजाद तू, भोगत बोलत बोल।
बहु भोजन बहु बोलतैं, परिहै सिरपै धोल[1] ॥९४॥
जो चाहौ अपना भला, तौ न सतावौ कोय।
नृपहूकै दुरसीसतैं[2], रोग सोग भय होय ॥९५॥
हिंसक जे छुपि बन बसैं, हरि[3] अहि जीव भगान।
(फिरैं) बैल हय गरधवा[4], गऊ भैंस सुखदान ॥९६॥
वैर प्रीति अबकी करी, परभवमैं मिलि जाय।
निबल सबल हैं एकसे, दई[5] करत है न्याय ॥९७॥
संसकार जिनका भला, ऊँचे कुलके पूत।
ते सुनिकैं सुलटैं जलद, जैसैं ऊन्याँ[6] सूत ॥९८॥
पहलैं चौकस ना करी, बूड़त विसनमँझार।
रँग मजीठ छूटै नहीं, कीये जतन हजार ॥९९॥
जे दुरबलको पोषि हैं, दुखतैं देत बचाय।
तातैं नृप घर जनम ले, सीधी संपति पाय ॥२००॥

इति सुभाषितनीति।

---

१ कुछ भी। २ थप्पड़। ३ बुरा आशीर्वाद-शाप। ४ सिंह। ५ गधा। ६ विधाता या कर्म। ७ नटाईपर चढ़ाया हुआ साफ सूत।

उपदेशाधिकार ।

ध्यावै सो पावै सही, कहत बाल गोपाल ।
बनिया देत कपर्दिका, नरपति करै निहाल ॥१॥
उलझे सुलझिर सुध भये, त्यौं तू उलझ्यौ मान ।
सुलझनिको साधन करै, तौ पहुंचै निजथान ॥२॥
लखत सुनत सूंघत चखत, इंद्री त्रिपत न होय ।
मन रोकैं इंद्री रुकैं, ब्रह्म परापति होय ॥३॥
तृष्णा मिटै संतोषतें, सेयें अति बढ़ि जाय ।
तृन डारें आग न बुझै, तृनारहित बुझ जाय ॥४॥
चाहि करै सो ना मिलै, चाहि समान न पाप ।
चाहि रखैं चाकरि करै, चाहि बिना प्रभु आप ॥५॥
पाप जान पर-पीड़बौ, पुन्य जान उपगार ।
पाप बुरो पुंन है भलो, कीजे राखि विचार ॥६॥
पाप अलप पुन है अधिक, ऐसो आरंभ ठानि ।
ज्यौं विचार विणजैं सुवर, लाभ बहुत तुछ हानि ॥७॥
विपति परैं सोच न करो, कीजे जतन विचार ।
सोच कियेतैं होत है, तन धन धर्म बिगार ॥८॥
सोच कियैं चंकित रहै, जात पराक्रम भूल ।
प्रबल होत वैरी निरखि, करि डारै निरमूल ॥९॥

---

१ कौड़ी । २ सुलझा करके । ३ शुद्ध । ४ पुण्य । ५ व्यापार करे । ६ अभिष्ठ ।

देश काल वय देखिकै, करि है वैद इलाज।
त्यौं गेही[1] घर वसि करै, धर्म कर्मका काज ॥१०॥
प्रथम धरम पीछै अरथ, वहुरि कामकौं सेय।
अन्त मोक्ष साधै सुधी, सो अविचल सुख लेय ॥११॥
धर्म मोक्षको भूलिकै, कारज करि है कोय।
सो परभव विपदा लहै, या भव निंदक[2] होय ॥१२॥
सक्ति समाँलि[3] कीजिये, दान धर्म कुल काज।
जस पावै मतलव सधै, सुखिया रहै मिजाज ॥१३॥
विना विचारे सक्तिके, करै न कारज होय।
थाह विना ज्यौं नदिनिमै, परै सु वूड़ै सोय ॥१४॥
अलभ मिल्यौ ना लीजिये, लये होत वेहाल।
वनमैं चावरकौं चुगैं, वँधे परेवा जाल[4] ॥१५॥
जैसी संगति कीजिये, तैसा ह्वै परिनाम।
तीर गहैं ताकै[5] तुरत, मालातैं ले नाम ॥१६॥
जनम अनेक कुसंगवस, लीनैं होय खराव।

---

१ गृहस्थी। २ निन्द्य—वदनाम। ३ सँभाल करके अर्थात् जितनी शक्ति हो, उतना। ४ एक व्याधा जंगलमे चावल फैला कर और उसपर जाल विछाकर छुप रहा था, चावलको देख कवूतर (परेवा) चुगनेके लिये आ वैठे, और उस जालमें फँस गये। इसकी कथा हितोपदेशमे है। ५ ताकता है, निशाना साधता है।

अब सतसंगतिके कियें, है शिवपथका लाभ ॥१७॥
नीति तजैं नहिं सतपुरुष, जो धन मिलै करोर।
कुल तिय बनै न कंचनी, भुगतै विपदा घोर ॥१८॥
नीति धरैं निरभै सुखी, जगजन करैं सराहैं।
भंडे जनम अनीतितैं, दंड लेत नरनाँह ॥१९॥
नीतिवान नीति न तजै, सहै भूख तिसैं त्रास।
ज्यौं हंसा मुक्ता विना, वनसर करै निवास ॥२०॥
लखि अनीति सुतकौं तजै, फिरै लोकमैं हीन।
मुसलमान हिंदू सरब, लखे नीति आधीन ॥२१॥
जे विगरे ते स्वादतैं, तजैं स्वाद सुख होय।
मीन परेवा मकर हरि, पकरि लेत हर कोय ॥२२॥
स्वाद लखैं रोग न मिटैं, कीयें कुपथ अकाज।
तातैं कुटकी पीजिये, खाँजे लूखा नाज ॥२३॥
अमृत ऊनोदर असन, विष सम खान अघाय।
नहैं पुष्ट तन बल करैं, यातैं रोग बढाय ॥२४॥
भूखरोगमंदन असन, बसन हरनकौं सीत।

---

१ रंडी–वेश्या। २ प्रशंसा। ३ बेइज्जत होता है। ४ नरनाथ–राजा। ५ प्यास। ६ एक कडुवी दवाई। ७ खाइये। ८ कम भोजन करना—कुछ खाली पेट रहना। ९ खूब अघाकर खा लेना।

अति विनांन नहिं कीजिये, मिलै सो लीजे मीत ॥२५॥
होनी प्रापति सो मिलै, तामैं फेर न सार ।
तिसना किये कलेस है, सुखी सँतोपविचार ॥२६॥
किते द्यौस भोगत भये, क्यौं हू त्रपत न पाय ।
त्रिपत होत संतोपसौं, पुन्य बढै अघ जाय ॥२७॥
पंडित मूरख दो जनैं, भोगत भोग समान ।
पंडित समवृति ममत विन, मूरख हरख अमांन ॥२८॥
सूत्र बांचि उपदेश सुनि, तजै न आप कपाय ।
जान पूछि कूवै परैं, तिनसौं कहा वसाय ॥२९॥
विनैंसमुझे ते समझसी, समझे समझैं नाहिं ।
काचे घट माटी लगै, पाके लागै नाहिं ॥३०॥
रुचितैं सीखैं ज्ञान है, रुचि विन ज्ञान न होय ।
सूधा घट वरसत भरै, औंधा भरै न कोय ॥३१॥
सांच कहै दूषन मिटै, नातर दोष न जाय ।
ज्यौंकी त्यौं रोगी कहै, ताकौ बनै उपाय ॥३२॥
करना जो कहना नहीं, पूछै मारग आन ।
नीसाना कैसै मरै, ताँकै आन ही थान ॥३३॥
औरनकौं बहकात है, करै न ज्ञान प्रकास ।
गाडर आनी ऊनकौं, बांधी चरै कपास ॥३४॥

---

१ विज्ञान—ज्यादा विचार करना । २ अप्रमाण—बहुत ।
३ बेसमझ । ४ देखे । ५ भेड़ ।

विन परिख्यां संयां कहै, मूढ न ज्ञान गहाय ।
अंधा बांटै जेवरी, सगरी बछरा खाय ॥३५॥
बोलेतैं जानै परैं, मूरख विद्यावान ।
कांसी रूपेकी प्रगट, बाजें होत पिछान ॥३६॥
ऊंचे कुलके सुत पढ़ें, पढ़ें न मूढ गमार ।
घुंग्घल तो क्यों हु न भनै, मैना भनै अपार ॥३७॥
मारग अर भोजन उदर, धन विद्या उरमांहिं ।
सनै सनै ही आत है, इकठा आवत नाहिं ॥ ३८ ॥
नित प्रति कुछ दीया किया, काटै पाप पहार ।
किसत मांहि देवां कियें, उतरै कर्ज अपार ॥३९॥
वृद्ध भये हु ना धरैं, क्यों विराग मनमाहिं ।
जे बहते कैसें बचैं, लकडी गहते नाहिं ॥४०॥
विन कल्मष निरभै जिके, ते तिरजैं हैं तीर ।
पोलौ घट कधौं सदा, क्यों करि बूडै नीर ॥४१॥
दुर्जन सज्जन होत नहिं, गरसौं तीरथवास ।
मेलो क्यों न कपूरमें, हींग न होय सुवास ॥४२॥
मुखतैं जाप कियो नहीं, कियो न करतैं दान ।
सदा भार बहते फिरैं, ते नर पशू समान ॥४३॥
स्वामि काममें टरि गये, पायो हक भरपूर ।
आगें क्या कहि छूटसी, पूछें आप हुजूर ॥४४॥

१ परखे विना। २ पाठ-सवक। ३ एक प्रकारका पक्षी।
४ शनैः शनैः, धीरे-धीरे।

करि संचित कोरो रहै, मूरख विलसि न खाय।
माखी कर मींड़त रहै, सहद भील ले जाय ॥४५॥
कर न काहुसों वैर हित, होगा पाप संताप।
स्वतै बनी लखिबौ करौ, करिबौकर प्रभु-जाप ॥४६॥
विविधि बनत आजीविका, विविधि नीतिजुत भोग।
तजकै लगैं अनीतिमैं, मुकर अधरमी लोग ॥४७॥
केवल लाग्या लोभमैं, धर्मलोकगति भूल।
या भव परभव तासका, हो है खोटी मूल ॥४८॥
उद्यम काज इसा करैं, साधैं लोक सुधर्म।
ते सुख पावैं जगतमैं, काटैं पिछले कर्म ॥४९॥
पर औगुन मुख ना कहैं, पोषैं परके प्रान।
विपतामैं धीरज भजैं, ये लच्छन विद्वान ॥५०॥
जो मुख आवै सो कहै, हित अनहित न पिछान।
विपति दुखी संपति सुखी, निलज मूढ सो जान ॥५१॥
धीर तजत कायर कहैं, धीर धरेतैं वीर।
धीरे जानै हित अहित, धीरज गुन गंभीर ॥५२॥
खिन हँसिबौ, खिन रूसिबौ, चित्त चपल थिर नाहिं।
ताका मीठा बोलना, भयकारी मनमाहिं ॥५३॥
विना दई सौगंन करै, हँसि बोलनकी बान।
सावधान तासौं रहौ, झूठ कपटकी खान ॥५४॥
जाका चित आतुर अधिक, सडर सिथिल मुख बोल।

१ शहद-मधु। २ कसम।

ताका भाख्या सांच नहिं, झूठा करे है कोले ॥५५॥
लोकरीतिको छांड़िकै, चालत है विपरीति।
धरम सीख तासौं कहैं, अधिकी करे अनीति ॥५६॥
जो मनमुख थिर ह्वै सुनै, ताकौं दीजै सीख।
विनयरहित धंधा (?) सहित, मांगे देय न भीख ॥५७॥
पहले कियां सो अब लियां, भोग रोग उपभोग।
अब करनी ऐसी करो, जो परभवके जोग ॥५८॥
जो करे हो सो पाय हो, बात तिहारे हाथ।
विकल्प तजि सदबुध करो, करतब तजो न साथ॥५९॥
छोड़ि मुहूरत लाभ न फल, सो मति वृथा गमाय।
करि कमाय आजीविका, कै प्रभुका गुन गाय ॥६०॥
धरम राखतें रहत हैं, प्रान ध्यान धन मान।
धरम गमत गम जात हैं, मान ध्यान धन प्रान ॥६१॥
धर्म हरन अपना मरन, गिनैं न धनहित जोय।
यौं नहिं जानैं मूढ़ जन, मरैं भोगि है कोय ॥६२॥
चातुर खरचत बिन गरें, पूंजी दे न गमाय।
कै सोगं कै पुन करे, चली जात है आँय ॥६३॥
भाँवी रचना फेरि दे, रंससैं करे उदास।
टरयौ मुहूरत राजको, राम भयौ वनवास ॥६४॥
कोटि करो परपंच किन, मिलि है प्रापति-मान।

१ कसम। २ कर्तव्य। ३ पुण्य। ४ आयु-उमर।
५ होनहार, भवितव्य। ६ रंगमें भंग।

समदर¹ भरचा अपार जल, आवै पात्र प्रमान ॥६५॥
पंडित² हू रोगी भये, व्याकुल होत अतीव ।
देखो वनमैं विन जतन, कैसें जीवत जीव ॥६६॥
कहे वचन फेर न फिरैं, मूरखके मन टेक ।
अपने कहे सुधार लैं, जिनके हिये विवेक ॥६७॥
लखि अजोगि विचछनैं मुरैं, दुरजन नेकु टरैं न ।
हरचौं काठ मोरत मुरै, मूखौं फटै मुरै न ॥६८॥
चिर सीख्यौं सुमरत रहत, तदपि विसर जा सुद्धि ।
पंडित मूरख क्या करै, भावी फेरै बुद्धि ॥६९॥
साँयर³ संपति विपतिमें, राखे धीरज ज्ञान ।
कायर व्याकुल धीर तजि, सहै वचन अपमान ॥७०॥
कहा होत व्याकुल भये, होत न दुखकी हान ।
रिपु जीतै हारै धरम, फैलै अजस कहान ॥७१॥
दुखमैं हाय न वोलिये, मनमैं प्रभुको ध्याय ।
मिटै असाता मिट गयै, कीजै जोग उपाय ॥७२॥
कर न अगाऊ कलपना, कर न गईकौं याद ।
सुख दुख जो वरतत अबै, सोई लीजे साध ॥७३॥
कवहूँ आभूषन वसन, भोजन विविध तयार ।
कवहूँ दारिद जौ⁴-असन, लीजै ममता धार ॥७४॥
धूप छांह ज्यौं फिरत है, संपति विपति सदीव ।
हरष शोक करि फँसत क्यौं, मूढ़ अज्ञानी जीव ॥७५॥

१ समुद्र । २ विद्वान । ३ साहसी । ४ जौका भोजन ।

असन औषिधी भूखकी, वसन औषधी सीत।
भला बुरा नहिं जोइये, हरजे बाधा मीत ॥७६॥
खाना पीना सोवना, फुनि लघु दीरघ व्याधि।
राव रंकके एक सी, एती क्रिया असाधि ॥७७॥
वाही बुधि धन जात है, वाही बुधितें आत।
जिनस व्याज विनजत बधै, ताही करतें जात ॥७८॥
पंडित भावों मूढ़ हो, सुखिया मंद कषाय।
मांठो मोटो है बलध, तांती दुबरी गाय ॥७९॥
बंधै भोग कषायतें, छुटै भक्ति वैराग।
इनमैं जो आछा लगै, ताही मारग लाग ॥८०॥
दुष्ट दुष्टता ना तजै, निंदत है हर कोय।
सुजन सुजनता क्यों तजें, जग जस निजहित होय॥८१॥
दुष्ट भलाई ना करै, किये कोटि उपकार।
सरपन दूध पिआइये, विषहीके दातार ॥८२॥
दुष्ट संग नहिं कीजिये, निश्चय नासैं प्रान।
मिलै ताहि जारै अगनि, भली बुरी न पिछान ॥८३॥
दुष्ट कही सुनि चुप रहौ, बोलैं है है हान।
भाटा मारै कीचमें, छींटे लागैं आन ॥८४॥

---

१ देखिये। २ बाधा मिटालीजिये। ३ लघुशंका-पेशाव। ४ दीर्घशंका-पाखाना। ५ वस्तु-चीज। ६ ठंडा-गरियाल। ७ गरम-तेज। ८ पत्थर।

कंटकका अर दुष्टका, और न बनै उपाय।
पग पेनहीं तर दाबिये, ना तर खटकत आय ॥८५॥
मन तुरंग चंचल मिल्या, बाग हाथमें राखि।
जा छिन ही गाफिल रहो, ता छिन डारै नाखि॥८६॥
मन विकलप ऐते करै, पेलके गिनै न कोय।
याके कियें न कीजिये कीजै हित ह्वै जोय ॥८७॥
पौनथकी देवनथकी, मनकी दौर अपार।
बूड़े जीव अनंत हैं, याकी लागे लार ॥८८॥
मन लागें अवकास दै, तब करतब बन जाय।
मन विन जाप जपै वृथा, काज सिद्ध नाहिं थाय ॥८९॥
जैसैं तैसैं जतन करि, जो मन लेत लगाय।
फुनि जो जो कारज चतुर, करै सु ही बन जाय ॥९०॥
जिनका मन वसिमैं नहीं, चालै न्याय अन्याय।
ते नर व्याकुल विकल ह्वै, जगत निंदता पाय ॥९१॥
बड़े भागतैं मन रतन, मिल्यौ राखिये पास।
जहांके तहांके खोलतैं, तन धन होत विनास ॥९२॥
तनतैं मन दीरघ घनौ, लांबौ अर गंभीर।
तन नासै नासै न मन, लरती बिरियां वीर ॥९३॥
मन माफिक चालै न जब, तब सुतकौं तज देत।
मन साधन करता निरखि, करत आनतैं हेत ॥९४॥

---

१ जूता। २ पलभरके विकल्पोंको कोई गिन नहीं सकता। ३ हवासे।

तनकी दौर प्रमानतैं, मनकी दौर अपार ।
मन बढ़करि घटि जात है, घटै न तनविस्तार ॥९५॥
मनकी गति को कहि सकै, सब जानै भगवान ।
जिन याकों बसि कर लयों, ते पहुंचे शिवथान ॥९६॥
परका मन मैला निरखि, मन बन जाता सेर ।
जब मन मारै आनतैं, तब मनका है सेर ॥९७॥
जब मन लागै मोखमें, तब तन देत सुकात ।
जब मन निरभै सुख गहै, तब फूलै सब गात ॥९८॥
गति गतिमें मरते फिरै, मनमें गया न फेर ।
फेर मिटैतैं मनतना, मरै न दूजी बेर ॥९९॥
जिनका मन आतुर भया, ते भूपति नहिं रंक ।
जिनका मन संतोषमें, ते नर इंद्र निसंक ॥४००॥
जंत्र मंत्र औषधि हरैं, तनकी व्याधि अनेक ।
मनकी बाधा सब हरै, गुरुका दिया विवेक ॥१॥
वही ध्यान वह जाप व्रत, वही ज्ञान सरधान ।
जिन मन अपना बसि किया, तिन सब क्रिया विधान ॥२॥
बिन सीखें बचवौ नहीं, सीखो राख विचार ।
झूठ कपटकी ढालकरि, ना कीजे (?) तरवार ॥३॥
जीनेतैं मरना भला, अपजस सुन्या न जात ।
कहनेतैं सुनना भला, बिगर जाय है बात ॥४॥
अपनै मन आछी लगे, निंदैं लोक सयान ।
ऐसी परत (?) न कीजियै, तजियै लोभ अग्यान ॥५॥

थोरा ही लेना भला, बुरा न लेना भौंत।
अपजस सुन जीना बुरा, तातैं आछी मौत ॥६॥
स्वामिकाज निज काम है, सधै लोक परलोक।
इसा काज बुधजन करौ, जामैं एते थोक ॥७॥
कहा होत व्याकुल भए, व्याकुल विकल कहात।
कोटि जतनतैं ना मिटै, जो हौंनी जा स्यात ॥८॥
जामैं नीत बनी रहै, बन आवै प्रभु नाम।
सो तौ दारिद ही भला, या विन सबैं निकाम ॥९॥
जो निंदातैं ना डरै, खा चुगली धन लेत।
वातैं जग डरता इसा, जैसैं लागा प्रेत ॥१०॥
कुलमरजादाका चलन, कहना हितमित वैन।
छोड़ैं नाहीं सतपुरुष, भोगैं चैन अचैन ॥११॥
दारिद रहै न सासता, संपति रहै न कोय।
खोटा काज न कीजिये, करौ उचित है सोय ॥१२॥
मानुषकी रसना बसैं, विप अर अंमृत दोय।
भली कहैं बच जाय है, बुरी कहैं दुख होय ॥१३॥
अनुचित हो है वसि विना, तामैं रहौ अबोल।
बोलेतैं ज्यौं वारि लगि, सायर उठै कलोल ॥१४॥
तृष्णा कीएं का मिलै, नासै हित निज देह।
सुखी संतोषी सासता, जग जस रहै सनेह ॥१५॥

१ शास्वत–निरन्तर।

मोह कोह दौंकरि तपै, पिवै न समता वारि।
विष खावै अंमृत तजै, जात धेनंतर हारि॥१६॥
दान धर्म व्योपार रन, कीजे सकति विचार।
विन विचार चालैं गिरैं, औंड़े खाड़मँझार॥१७॥
आमद लखि खरचैं अलप, ते सुखिया संसार।
विन आमद खरचैं घनौं, लहैं गार अर मार॥१८॥
लाख लाज विन लाँख सम, लाजसहित लख लाख।
भला जीवना लाजजुत, ज्यौं त्यौं लाजहिं राख॥१९॥
कुशल प्रथम परिपाक लख, पीछैं काज रचात।
पिछा पाँव उठाय तव, अगली ठौर लखात॥२०॥
देव मनुप नारक पशू, सवै दुखी करि चाहि।
विना चाह निरभै सुखी, वीतराग विन नाहिं॥२१॥
जीवजात सव एकसे, तिनमें इता विनान।
चाह सहित चहुंगति फिरैं, चाह रहित निरवान॥२२॥
गुरु ढिग जिन पूछी नहीं, गह्यौ न आप सुभाव।
सूना घरका पाहुना, ज्यौं आवे त्यौं जाव॥२३॥

विद्याप्रशंसा।

जगजन वंदत भूपती, ताह (?) अधिक विद्वान।
मान भूपती देश निज, विद्या सारे मान॥२४॥

१ दावासे—अग्निसे। २ धन्वन्तरि वैद्य। ३ गहरे गढ़ेमें। ४ लाख (चपड़ा) के समान। ५ भेद—विज्ञान।

दारिद संपतिमैं सदा, सुखी रहत विद्वान ।
आदरतैं लाभै सु लै, सहै नाहिं अपमान ॥२५॥
या भव जस परभव सुखी, निर्भै रहै सदीव ।
पुन्य बढ़ावै अघ हरै, विद्या पढ़िया जीव ॥२६॥
राज चोर डरपै धनी, धन खरचत घट जाय ।
विद्या देते मान बढ़ै, नरपति बंदै पाय ॥२७॥
दरबवान डरपत रहै, ना बैठे जा थान ।
भूपसभा चतुरनविषै, अति उद्धत विद्वान ॥२८॥
च्यारि गतिनमैं मनुषकौं, पढ़िवेकौ अधिकार ।
मनुष जनम धरि ना पढ़ै, ताकौं अतिधिक्कार ॥२९॥
पुस्तक गुरु थिरता लगन, मिलै सुथान सहाय ।
तब विद्या पढ़िवो बनै, मानुष गति परजाय ॥३०॥
जो पढि करै न आचरन, नाहिं करै सरधान ।
ताकौं भणिवौ बोलिवौ, काग बचन परमान ॥३१॥
रिपु समान पितु मातु जो, पुत्र पढ़ावैं नाहिं ।
सोभा पावै नाहिं सो, राजसभाके माहिं ॥३२॥
अलप असन निद्रा अलप, ख्याल न देखै कोइ ।
आलस तजि घोखत रहै, विद्यारथि सुत सोइ ॥३३॥
पांचथकी सोलह बरस, पठन समय यौं जान ।
तामैं लाड़ न कीजिये, फुनि सुत मित्रै समान ॥३४॥

१ पढ़ना । २ सोलह बरससे अधिक उमरके पुत्रको मित्रके समान मानना चाहिये ।

तजिवे गहिवेको वचन, विद्या पढ़ते ज्ञान।
ई सरधा जब आचरन, इंद्र नमैं तब आन ॥३५॥
धनतैं कलमप[1] ना कटै, कांटै विद्या ज्ञान।
ज्ञान विना धन क्लेशकर, ज्ञान एक सुखखान ॥३६॥
जो सुख चाहै जीवको, तौ बुधजन या मान।
ज्यौं त्यौं मर पच लीजिये, गुरुतै साचा ज्ञान ॥३७॥
सींग पूंछ विन बैल है, मानुष विना विवेक।
भख्य अभख[2] समझै नहीं, भगिनी भामिनी एक ॥३८॥

मित्रता और संगति।

जोलौं तू संसारमें, तौलौं मीत रखाय।
सलौं[3] लियें विन मित्रकी, कारज बीगर जाय ॥३९॥
नीति अनीति गनै नहीं, दारिद संपतिमाहिं।
मीत सला ले चाल है, तिनका अपजस नाहिं ॥४०॥
मीत अनीत बचायकै, देहै विसन छुड़ाइ।
मीत नहीं वह दुष्ट है, जो दे विसन लगाइ ॥४१॥
धन सम कुल सम धरम सम, सम वय मीत बनाय।
तासौं अपनी गोप कहि, लीजै भरम मिटाय ॥४२॥
औरनतैं कहिये नहीं, मनकी पीडा कोइ।
मिले मीत परकासिये, तब वह देवै खोइ ॥४३॥
खोटेसौं बातैं कियें, खोटा जानै लोय।

---

१ पाप । २ भक्ष्य-खाने योग्य, अभक्ष्य-नहीं खाने योग्य । ३ सलाह ।

वेश्याकौ पथ पूछतां, भरम करैं हूर कोय ॥४४॥
सतसंगतिमें बैठनां, जनम सफल ह्वै जाय।
मैलै गैलें जावतां, आवें मैल लगाय ॥४५॥
सतसंगति आदर मिलें, जगजन करैं बखान।
खोटा सँग लखि सब कहैं, याकी निंगां न आन ॥४६॥
येते मीत न कीजिये, जती लवपती बाल।
ज्वारी चोरी तसकरी, अँमली अर बेहाल ॥४७॥
मित्रतना विसवास सम, और न जगमें कोय।
जो विसासकौ घात है, बडे अधरमी लोय ॥४८॥
कठिन मित्रता जोरिये, जोर तोरिये नाहिं।
तोरेतैं दोऊनके, दोप प्रगट ह्वै जाहिं ॥४९॥
विपत मैंटिये मित्रकी, तन धन खरच मिजाज (?)।
कबहूं वांके बखतमें, कर है तेरो काज ॥५०॥
मुखतें बोलै मिष्ट जो, उरमें राखै घात।
मीत नहीं वह दुष्ट है, तुरत त्यागिये भ्रात ॥५१॥
अपनेसौ दुख जानकैं, जे न दुखावैं आन।
ते सदैव सुखिया रहैं, या भाखी भगवान ॥५२॥

जूआ निषेध।

जननी लोभ लबारकी, दारिद दादी जान।
कूरा कलही कामिनी, जुआ विपतिकी खान ॥५३॥

१ खराब रास्तेसे। २ विश्वास। ३ दूत-चुगलखोर। ४ चोर। ५ नशेबाज।

धन नासै नासै धरम, ज्वारी धरै कुध्यान।
धर्माधर्म धर्यौ करै, धिग धिग करै जहान॥५४॥
ज्वारीकौं जोरू तजै, तजै मात पितु भ्रात।
द्रव्य हरै बाजै लरै, बोलै बात कुबात॥५५॥
ज्वारी जाय न राजमैं, करि न सकै ब्यापार।
ज्वारीकी परतीति नहिं, फिरता फिरै गुंवार॥५६॥
बाँधै ज्वारी चीथरा, डोलै गैलै ख्वाल।
कबहूं चोरा पहिरिकै, धरै फरेब मार॥५७॥
असुचि असनकी ग्लानि नहिं, रहै हाल बेहाल।
तात मरन तक रत रहै, तजै न जुआख्याल॥५८॥
कहा गिनति सामान्य जन, पांडव भये खराब।
जूआ खेलत भूपकी, क्यों हू रहै न आब॥५९॥
जैसो मान चंडालको, तैसा पावै खान।
नीच ऊंच कुलकी तजै, करै होय पिठान॥६०॥

मांसनिषेध।

हाड़ मांस मुरदानके, जाका कांसामाहिं।
सो तो प्रगट मसान है, कांसा खासा नाहिं॥६१॥
दूध दही घृत धान फल, सुख मिष्ट वर खान।
ताकौं तजकै अधम मुख, खोसी माटी आन॥६२॥
जीव अनंता मांसमें, भाखै श्रीभगवान।
चालत काटत मांसकौं, हिंसा होत महान॥६३॥

१ ख्वार—खराब। २ पानी—इज्जत। ३ ख्याल। ४ मांस।

मांस पुष्ट निज करनकौं, दुष्ट आंन-पल खात।
बुरा करेतैं ह्वै भला, सो कहुं सुनी न बात ॥६४॥
स्यार सिंह राक्षस अधम, तिनका भख है मांस।
मोक्ष होन लायक मनुष, गहैं न याकी बांस ॥६५॥
उत्तम होता मांस तौ, लगता प्रभुके भोग।
यौं भी या जानी परै, खोटा है संयोग ॥६६॥

मद्यनिषेध।

सड़ि उपजैं प्रानी अनंत, मदमैं हिंसा भौंत।
हिंसातैं अघ ऊपजै, अघतैं अति दुख होत ॥६७॥
मदिरा पी मत्ता मलिन, लौटै बीच बजार।
मुखमैं मूतैं कूकरा, चाटैं विना विचार ॥६८॥
उज्जल ऊंचे रहनकी, सबही राखत चाय।
दारू पी रोरी परैं, अचरज नाहिं अघाय ॥६९॥
दारूकी मतवालमैं, गोप बात कह देय।
पीछैं वाका दुख सहै, नृप सरंवस हर लेय ॥७०॥
मतवाला है बावला, चालै चाल कुचाल।
जातैं जावै कुगतिमैं, सदा फिरै बेहाल ॥७१॥
मानुष ह्वैकै मद पिये, जानै धरम बलाय।
आंख मूंदि कूब परै, तासौं कहा बसाय ॥७२॥

---

१ दूसरोंका मांस। २ गंध। ३ सर्वस्व-सारा धन।

वेश्यानिषेध।

चरमकार बेचीसुता, गनिका लीनी मोल।
ताको सेवत मूढजन, धर्म कर्म दे खोल ॥७३॥
हीन दीनते लीन है, सेती अंग मिलाय।
लेती सरबस संपदा, देती रोग लगाय ॥७४॥
जे गनिका सँग लीन हैं, सर्व तरह ते हीन।
तिनके करनैं खावना, धर्म कर्म कर छीन ॥७५॥
खातां पीतां सोवतां, करतां सब व्योहार।
गनिका उर बसिबौ करै, करतब करै असार ॥७६॥
धन खरचै ताला रचै, हीन, खीन तज देत।
बिसनीको मन ना मुरै, फिरता फिरै अचेत ॥७७॥
द्विज खत्री कोली वनिक, गनिका चाखत लाल।
ताको सेवत मूढजन, मानत जनम-निहाल ॥७८॥

शिकारकी निन्दा।

जैसे अपने प्रान हैं, तैसे परके जान।
कैसे हरते दुष्ट जन, बिना बैर परप्रान ॥७९॥
निरजन वन घनमें फिरैं, भरैं भूख भय हान।
देखत ही घूमत छुरी, निरदई अधम अजान ॥८०॥
दुष्ट सिंह अहि मारिये, तामें का अपराध।
प्रान पियारे सबनिकों, याही मोटी बाँध ॥८१॥

---

१ चमार-मोची। २ सेवन करती है। ३ व्यसनीका। ४ लौटता है। ५ लाला या लार। ६ सफल। ७ बाधा-अड़चन, दोष।

भलौ भलौ फल लेत है, बुरौ बुरौ फल लेत।
तू निरदह ह्वै मारकै, क्यों ह्वै पापसमेत ॥८२॥
नैकु दोष परकौ किये, बाढै बड़ौ कलेस।
जे पातकि प्रानिनि हरैं, ता ह्वै चुक्यौ असेस ॥८३॥
प्रान पोषना धर्म है, प्रान नासना पाप।
ऐसा परका कीजिये, जिसा सुहावै आप ॥८४॥

चोरीनिन्दा।

प्रान पलत है धन रहै, तातै तासों प्रीति।
सो जोरी चोरी करै, ता सम कौन अनीति ॥८५॥
लरैं मरैं घर तजि फिरैं, धन प्रापतिके हेत।
ऐसेकौं चोरैं हरैं, पुरुष नहीं वह प्रेत¹ ॥८६॥
धनी लरै नृप सिर हरै, बसैं निरंतर घात।
निर्पक² ह्वै चोर न फिरै, डरै रहै उतपात ॥८७॥
बहु उद्यम धन मिलनका, निज परका हितकार।
सो तजि क्यौं चोरी करै, तामैं विघन अपार ॥८८॥
चोरत डर भोगत डरै, मरै कुगति दुख घोर।
लाभ लिख्यौ सो ना टरै, मूरख क्यों ह्वै चोर ॥८९॥
चिंता चितवैं ना टरै, डरै सुनत ही बात।
प्रापतिका निहचै नहीं, जाग हुए मर जात ॥९०॥
चोर एकतैं सब नगर, डरै जगै सब रैन।
ऐसी और न अधमता, जामैं कहूं न चैन ॥९१॥

१ भूत। २ निडर।

परस्त्रीसंगनिषेध।

अपनी परतख देखिकै, जैसा अपनैं दर्द।
तैसा ही परनारिका, दुखी होत है मर्द॥९२॥
निपट कठिन परतिय मिलन, मिलै न पूरै हौंस।
लोक लरै नृप दंड करै परै महत पुनि दोस॥९३॥
ऊंचा पद लोक न गिनैं, करै आवरू दूर।
औंगुन एक कुसीलतैं, नाम होत गुन भूर॥९४॥
कन्या फुनि परव्याहुता, नपरस अपरस जात।
मारी विभचारी गहै, गरव नाहिं दुर्भांत॥९५॥
कपट अपट तकिवौ करै, सदा जार मांजार॥९६॥
भोग करैं नाहीं डरै, परै पीठ पैजार॥९६॥
धिक कुसील कुलवानकौं, जासैं डरत जहान।
व्रतगाव्रत लागै बंटा, नाहिं रहत कुलकान॥९७॥
ना सेई नाहीं छुई, रावन पाई वात।
चली जात निंदा अजौं, जगमैं भई विख्यात॥९८॥
प्रथम सुभग मोहित सुगम, मध्य वृथा रस स्वाद।
अंत विरस दुख नरकता, विसन-विवाद अवाद॥९९॥
विसन लगा जा पुरुषकैं, सो तौ सदा खराव।
जैसे हीरा ऐवजुत, नाहीं पावै आव॥५००॥

इति उपदेशाधिकार।

---

१ इज्जत। २ यार—व्यभिचारी। ३ मार्जार—बिल्ली। ४ जूते। ५ बट्टा लगता है इज्जतमें। ६ कुलकी लाज। ७ दोषवाला।

विरागभावना।

केश पलटि पलट्या वपू[1], ना पलटी मन बाँक।
बुझै न जरती झूंपरी, ते जर चुके निसांक ॥१॥
नित्य आयु[3] तेरी झरै, धन पैले[2] मिलि खाँय।
तू तौ रीता ही रह्या, हाथ झुलाता जाय ॥२॥
अरे जीव भववनविषैं, तेरा कौन सहाय।
काल सिंह पकरै तुझे, तब को लेत बचाय ॥३॥
को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमैं, बिछुरेंगे निरधार ॥४॥
तात मात सुत भ्रात सब, चले सु चलना सोहि।
चौष्टि बरष जाते रहे, कैसे भूलै तोहि ॥५॥
बहुत गई तुछ सी रही, उसमैं धरौ विचार।
अब तौ भूले इतना, निपट नजीक किनार ॥६॥
झूठा सुत झूठी तिया, है ठगसा परिवार।
खोसि लेत है ज्ञानधन, मीठे बोल उचार ॥७॥
आसी सो जासी सही, रहसी जेते आय।
अपनी गो आया गया, मेरा कौन बसाय ॥८॥
जावौ ये भावौ रहो, नाहीं तन धन चाय।
मैं तौ आतमरामकूं, मगन रहूं गुन गाय ॥९॥

---

१ वपु-शरीर। २ दूसरे लोग। ३ आयु-उमर।

जो कुबुद्धितैं बन गये, ते ही लागे लार ।
नई कुबुधकरि क्यों फसूं, करता बनिरे अबार ॥१०॥
चींटी मीठा ज्यौं लगैं, परिकरके चहुँओर ।
तू या दुखकौं सुख गिनै, याही तुझमैं भोरे ॥११॥
अपनी अपनी आयु ज्यौं, रह हैं तेरे साथ ।
तेरे राखे ना रहैं, जो गहि राखै हाथ ॥१२॥
जैसैं पिछले मर गये, तैसैं तेरा काल ।
काके कहे नचिंत है, करता क्यौं न संभाल ॥१३॥
आयु कटत है रातदिन, ज्यौं करोंततैं काठ ।
हित अपना जलदी करौ, पड़्या रहैगा ठाठ ॥१४॥
संपति विजुरी सारिसी, जोबन बादर रंग ।
कोविद कैसैं राच है, आयु होत नित भंग ॥१५॥
परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय ।
छलबलकरि क्यौं हु न बचै, काल झपट ले जाय ॥१६॥
बनती देखि बनाय लै, फुनि जिन राख उधार ।
"बहते बारि पखार कर" फेरि न लाभै वारि ॥१७॥
विसन भोग भोगत रहे, किया न पुन्य उपाय ।
गांठ खाय रीते चले, हटवारेमैं आय ॥१८॥
खावौ खरचौ दान द्यौ, विलसौ मन हरषाय ।
संपति नैद-परवाह ज्यौं, राखी नाहिं रहाय ॥१९॥

१ बनकरके । २ भोलापन । ३ पंडित-विवेकी । ४ बाजारमें । ५ नदीके प्रवाहके समान ।

विरागभावना।

केश पलटि पलटचा वपू[1], ना पलटी मन बॉक।
बुझै न जरती झूंपरी, ने जर चुके निसांक ॥१॥
नित्य आयु तेरी झरै, धन पैले[2] मिलि खाँय।
तू तौ रीता ही रह्या, हाथ झुलाता जाय ॥२॥
अरे जीव भववनविषैं, तेरा कौन सहाय।
काल सिंह पकरै तुझे, तब को लेत बचाय ॥३॥
को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमैं, बिछुरेंगे निरधार ॥४॥
तात मात सुत भ्रात सब, चले सु चलना मोहि।
चौसठि बरप जाते रहे, कैसे भूलै तोहि ॥५॥
बहुत गई तुछ सी रही, उरमैं धरौ विचार।
अब तौ भूले डूबना, निपट नजीक किनार ॥६॥
झूठा सुत झूठी तिया, है ठगसा परिवार।
खोसि लेत है ज्ञानधन, मीठे बोल उचार ॥७॥
आसी सो जासी सही, रहसी जेते आंय[3]।
अपनी गौ आया गया, मेरा कौन बसाय ॥८॥
जावौ ये भावौ रहौ, नाहीं तन धन चाय।
मैं तौ आतमरामकै, मगन रहू गुन गाय ॥९॥

---

१ वपु-शरीर। २ दूसरे लोग। ३ आयु-उमर।

जो कुबुद्धितैं बन गये, ते ही लागे लार ।
नई कुबुधकरि क्यौं फसूं, करता बनि[1] अचार ॥१०॥
चींटी मीठा ज्यों लगै, परिकाकै चहुँओर ।
तू या दुखकों सुख गिनै, याही तुझमें भोर[2] ॥११॥
अपनी अपनी आयु ज्यौं, रहै है तेरे साथ ।
तेरे राखे ना रहैं, जो गहि राखै हाथ ॥१२॥
जैसैं पिछले मर गये, तैसैं तेरा काल ।
काके कहै नचिंत है, करता क्यौं न संभाल ॥१३॥
आयु कटत है रातदिन, ज्यौं करौंतैं काठ ।
हित अपना जलदी करो, पड्या रहैगा ठाठ ॥१४॥
संपति बिजुरी सारिसी, जोवन बादर रंग ।
कोविद[3] कैसें राचे है, आयु होत नित भंग ॥१५॥
परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय ।
छलबलकरि क्यौं हू न बचै, काल झपट ले जाय ॥१६॥
बनती देखि बनाय लै, फुनि जिन राखै उधार ।
"बहते वारि पखार कर" फेरि न लाभै वारि ॥१७॥
बिसन भोग भोगत रहे, किया न पुन्य उपाय ।
गांठ खाय रीते चले, हटवारेमैं[4] आय ॥१८॥
खावौ खरचौ दान द्यौ, बिलसौ मन हरषाय ।
संपति नद[5]-परवाह ज्यौं, राखी नाहिं रहाय ॥१९॥

---

१ बनकरके । २ भोलापन । ३ पंडित-विवेकी । ४ बाजारमें । ५ नदीके प्रवाहके समान ।

निसि सूते संपतिसहित, प्रात हो गये रंक ।
सदा रहै नहिं एकसी, निभै न काकी वंक ॥२०॥
तुछ स्यानप[1] अति गाफिली, खोई आयु असार ।
अब तौ गाफिल मत रहौ, नेड़ौ[2] आत करार ॥२१॥
राचौ विरचौ कौनसौं, देखी वस्त समस्त ।
प्रगट दिखाई देत है, भानुउदय अर अस्त ॥२२॥
देधारी[3] बचता नहीं, सोच न करिये भ्रात ।
तन तौ तजि गे रामसे, रावनकी कहा बात ॥२३॥
आया सो नाहीं रह्या, दशरथ लछमन राम ।
तू कैसैं रह जायगा, झूठ पापका धाम ॥२४॥
करना क्या करता कहां, धरता नाहिं विचार ।
पूंजी खोई गांठकी, उलटी खाई मार ॥२५॥
धंधा करता फिरत है, करत न अपना काज ।
घरकी झुंपरी जरत है, पर घर करत इलाज ॥२६॥
किते द्योस[4] बीते तुमैं, करते क्यौं न विचार ।
काल गहैगा आय कर, सुन है कौन पुकार ॥२७॥
जो जीये तो क्या किया, मूए क्या दिया खोय ।
लारै लगी अनादिकी, देह तजै नहिं तोय ॥२८॥
तजै देहसौं नेह अर, मानै खोटा संग[5] ।

---

१ स्यानपना—चतुराई। २ नजदोक। ३ देहधारी—जोव। ४ दिवस—दिन। ५ परिग्रह।

नहिं पोषै सोषत रहै, तब तू होय निसंग ॥२९॥
तन तौ कारागार है, सुत परिकर रखवार।
यौं जानै मानै न दुख, मानै हितू गँवार ॥३०॥
या दीरघ संसारमें, मुवौ अनंती बार।
एक बार ज्ञानी मरै, मरै न दूजी बार ॥३१॥
देह तजैं मरता न तू, तौ काहेकी हान।
जो मृए तू मरत है, तौ ये जान कल्यान ॥३२॥
जीरन तजि नूतन गहै, परगट रीति जहान।
तैसें तन गहना तजन, बुधजन सुखी न हान ॥३३॥
लेत सुखी देता दुखी, यह करजकी रीति।
लेत नहीं सो दे कहा, सुख दुख बिना नचीत ॥३४॥
स्वारथ परमारथ बिना, मूरख करत बिगार।
कहा कमाई करत है, गुडी उडावनहार ॥३५॥
सहज मिली लौरि ना गहै, करै बिपतके काम।
चौपर रचि खेलैं लरैं, लेत नहीं सुख राम ॥३६॥
जगमें होरी हो रही, छार उड़त सब ओर।
बाझ गये बचवौ नहीं, दचौ अपनी ठौर ॥३७॥
जगजनकी विपरीत गति, हरपत होत अकाज।
होरीमें धन दे नचै, बनि भडुवा तजि लाज ॥३८॥

---

१ जेलखाना। २ महण करना। ३ पतंग उड़ानेवाला। ४ लक्ष्मी। ५ बाह्य-बाहिर।

मोमाते सब ही भये, बोलैं बोल कुबोल।
मिलबौ बसिबौ एक घर, बचबौ रहौं अबोल ॥३९॥
जगजन कारज करत सब, छलबल झूठ लगाय।
इमा काज कोविद करै, जामैं धरम न जाय ॥४०॥
"आसी सो जासी" मही, टूटे जुर गई प्रीति।
देखी सुनी न सासती, अथिर जगतकी रीति ॥४१॥
सब परजायनिकौ सदा, लागि रह्यौ संस्कार।
विना सिखाये करत यौं, मैथुन हार निहार ॥४२॥

ममता और समता।

सुनैं निपुन ममताविषैं, कारन और हजार।
विना सिखाये गुरुनके, होत न समताधार ॥४३॥
आकुलता ममता तहां, ममता दुखकी नीव।
समता आकुलता हरै, तातैं सुखकी सीव ॥४४॥
समता भवदधिसोसनी, ज्ञानामृतकी धार।
भवातापकौं हरत है, अद्भुत सुखदातार ॥४५॥
समतातैं चिंता मिटै, भैंटै आतमराम।
ममतातैं विकलप उठै, हेरै सारा ठाम ॥४६॥
ममताकौ परिकर घनौं, क्रोध कपट मद काम।
त्याजैं समता एकली, बैठी अपने धाम ॥४७॥

१ मोहमाते—मोहमें मतवाले। २ ज्ञानी। ३ आया है सो जायगा। ४ आहार भोजन। ५ नीहार—पाखाना। ६ परिवार।

ममता काठ अनेकनें, चिता अगनि लगाय।
जरै अनंताकालकी, ममता नीर बुझाय ॥४८॥
ममता अपनी नारि सग, निज सुख निरभै होय।
भय कलेसकरनी विपत, ममता परकी जोय ॥४९॥
ममता संग अनादिकी, करै अनंते फल।
जब जिय गुरु संगति करै, तब या छांडै गैल ॥५०॥
ममता बेटी पापकी, नरक-सदन ले जाइ।
धर्मसुता समता जिकां, सुरगमुकतिसुखदाइ॥५१॥
ममता समताकी करी, निज घटमाहिं पिछान।
बुरी तजा आछी भजा, जो तुम हौ बुधिमान ॥५२॥
जाकी संगति दुख लहौ, ताकी तजौ न गैल।
तौ तुमको कहिये कहा, ज्योंके त्यौं हौ बैल ॥५३॥
पूर्व कमाया सो लिया, कहा कियें होय काम।
अब करनी ऐसी करौ, परभौ होय सुख्धाम ॥५४॥
जैसें यहां तैसें वहां, बरनत है सब ग्याथ।
ज्यों अब यहां साधन करौ, त्यों ही परभव साथ ॥५५॥
याही भवमें रचि रहे, परभौ करौ न याद।
चाले रीते होयकैं, क्या खावोगे स्वाद ॥५६॥
जौलों काय कटै नहीं, रहै भूखकी व्याध।
परमारथ स्वारथतना, तौलों साधन साध ॥५७॥

---

१ की।

सरतेमैं करते नहीं, करते रहे विचार ।
'परनिर छोड़ी वापके,' फिर पछतात गवाँर ॥५८॥
अहिनिस प्रानी जगतके, चले जात जमथान ।
सेसा थिरता गहि रहे, ए अचरज अज्ञान ॥५९॥
नागा चलना होयगा, कछु न लागै लार ।
लार लैन का है मता, तौ ठानौ दातार ॥६०॥
नरनारी मोहे गये, कंचन कामिनिमाहिं ।
अविचल सुख तिन ही लिया, जे इनके वस नाहिं ।६१।
मिथ्या रुज नास्यौ नहीं, रह्यो हियामैं वास ।
लीयौ तप द्वादस वरस, किया द्वारिका नास ॥६२॥
कहा होत विद्या पढ़े, विन परतीति विचार ।
अभविसेन संज्ञा लई, कीनौं हीनाचार ॥६३॥
विना पढ़ें परतीति गहि, राख्यौ गाढ़ अपार ।
याद करंत 'तुष-माष' कौं, उतर गये भवपार ॥६४॥
आपा-पर-सरधान विनु, मधुपिंगल मुनिराय ।
तप खोयौ वोयौ जनम, रोयौ नरकमेंझाय ॥६५॥
कोप्यौ मुनि उपसर्ग सुनि, लोप्यौ नृप पुर देस ।
कीनौं दंडकवन विषम, लीनौं नरकप्रवेस ॥६६॥
सुख भानै भानै धरम, जोवनधनमद अंध ।
माल जानि अहिकौ गहैं, लही विपति मतिअंध ॥६७॥

१ ब्याह करके ।

भोग विसन सुख ख्यालमैं, दई मनुषगति खोइ।
ज्यौं कपूत खा तात धन, विपता भोगै रोइ ॥६८॥
मुनी थके गेही थके, थाके सुरपति सेस।
मरन समय नाहीं टरै, हो है वाही देस ॥६९॥
नरक निकसि तिर्यंच ह्वै, पशु ह्वै तिर्जग देव।
दुर्निवार फिरना सदा, संसारीकी टेव ॥७०॥
रोग सोग जामन मरन, क्षुधा नींद भय प्यास।
लघु दीरघ बाधा सदा, संसारी दुखवास ॥७१॥
संसृत वस्तु न आन कछु, है ममतासंयुक्त।
ममता तजि समता लई, ते हैं जीवनमुक्त ॥७२॥
मो-ममता जलतैं प्रबल, तरु अग्यान संसार।
जनम मरन दुख देत फल, काटौ ज्ञान-कुठार ॥७३॥
मगन रहत संसारमैं, तन धन संपति पाय।
ते कबहूं बच है नहीं, सूते आग लगाय ॥७४॥
जे चेते संसारमैं, सुगुरु वचन सुनि कान।
ता माफिक साधन करत, ते पहुंचैं शिवथान ॥७५॥
संसारीकों देख दुख, सतगुरु दीनदयाल।
सीख देत जो मान ले, सो तौ होत खुस्याल ॥७६॥
अति गभीर संसार है, अगम अपारंपार।
बैठे ज्ञानजिहाजमैं, ते उतरे भवपार ॥७७॥
जे कुमती पीड़ैं हरैं, पर तन धन तिय प्रान।
लोभ क्रोध मद मोहतैं, ते संसारी जान ॥७८॥

लखि सरूप संसारका, **पांडव** भए विराग ।
रहे सुथिर निज ध्यानमैं, टरे न जरते आग ॥७९॥
पले कहां जनमैं कहां, हनैं घनैं नृपमान ।
कृष्ण त्रिखंडी भ्रांत-सर, गए तिसाए प्रान ॥८०॥
दशमुख हारचौ कष्टतैं, सह्यौ **सीत** वनवास ।
अगनि निकस दिख्या[1] गही, भई इंद्र तजि आस ॥८१॥
बाल हरचौ सुरकर परचौ, पल्यौ आन जा थान ।
प्रदुमन सोलह लाभ ले, मिल्यौ तात रन ठान ॥८२॥
त्यागी पीहर सासरे, डरी गुफाके कौन ।
गई माम घर सुतसहित, मिली **अंजना** पौन[3] ॥८३॥
रानी ठानी कुक्रिया, सारी निसि तजि लाज ।
सील **सुदर्शन** ना तज्यौ, भज्यौ हिये जिनराज ॥८४॥
चुभ्यौ रोम **सुकुमार** तन, रहे करत वर भोग ।
सह्यौ स्याल-उपसर्ग-दुख, प्रथमहिं धारत जोग ॥८५॥
मात तात पांचौं तिया, सब कर चुके विचार ।
दिख्या[2] धरकैं सिव वरी, स्वामी **जंवुकुमार** ॥८६॥
भव षट कीनैं कमठ हठ, सहे दुष्ट उपसर्ग ।
पारसप्रभु समता लई, करम काटि अपवर्ग ॥८७॥
सहे **देशभूषन** मुनी, **कुलभूषन** मुनिराय ।
घोर वीर उपसर्ग सुर, केवलज्ञान उपाय ॥८८॥

---

१ जगत्कुमारके बाणसे । २ दीक्षा । ३ पवनंजयसे ।

सुर गेरे संजयत मुनि, दृढ़ विद्याधर मार।
सो मरि कै निवसिये नर्ग, फनिंद कियो उपगार॥८९॥
गाढ़ गह्यो गाढ़ी तिर्यो, कहा साह कहा चोर।
अंजन भया निरंजना, सेठ वचनके जोर॥९०॥
मारे मुरगे चून रचि, कष्ट लयो भव सात।
राय जसोधर चंद्रमति, ताकी कथा विख्यात॥९१॥
सुने पसु उपदेस मुनि, सुलझे क्यों न पुमान।
नाहरतें भये वीरजिन, गज पारस भगवान॥९२॥
अगनि जगाई सुसर सिर, आप मगन रहि ध्यान।
गजकुमार मुनि करम हरि, भये सिद्ध भगवान॥९३॥
कोढ़ सह्यो सागर तर्यो, कर्यो भांड़ अज्ञान।
सिरीपाल साहस गह्यो, जाय लयो निजथान॥९४॥
गनिकाघर आरूढ़ गिरि, रतनदीप मेरूढ़।
चारुदत्त फुनि मुनि भये, सुकलध्यान आरूढ़॥९५॥
जय मसान थप्पो लियो, रयो अमर घर जाय।
दुष्ट जेयो नृप मुनि भयो, जीवंधर सिर थाय॥९६॥
मंदिर कोट महेसके, वंच दिये सिवकोट।
समंतभद्र उपदेस सुनि, आये जिनमतओट॥९७॥
सहज सहज त्यागन लगे, धनकुमार संसार।
सालभद्र सुनि तहँ तज्यो, दो मुनि हुए लार॥९८॥

---

१ गाढ़सम्यक्त्व—दृढ़श्रद्धान। २ पुरुष। ३ सागर—समुद्र।
४ जीता—काष्ठांगार दुष्टको हराया।

श्रेणिक नृप संबोधतैं, धर्मरुची मुनिराज।
त्याग कुध्यान सुध्यान गहि, भये मुक्त करि काज।
समुद्र[1] तरचा कन्या वरचा, बहुरि भया अधिराज।
प्रीतंकर मुनि होइकैं, लयौ मुक्तकौ राज ॥६००॥
लव अंकुस सुत राम पति, जनकनृपसे बाप।
हरन अरने[2] जरना अगनि, सीता भुगत्या पाप ॥१॥
भर्त्ता अर्जुन पंडवा, हितू कृष्ण महाराज।
तऊ दुसासन चीर गहे, हरी द्रौपदी लाज ॥२॥
बाल वृद्ध नारी पुरुष, ज्ञानी तजैं न धीर।
कन्या कुमारी चंदना, भुगत्या दुख गंभीर ॥३॥
साहसतैं टरि ज्या विपति, मैनासुंदरि धीर।
कोढ़ी वरकौं आदरयौ, कंचन हुवौ सरीर ॥४॥
टरैं घोर उपसर्ग सब, सांचे गाढ़विचार।
वारिषेन सुकुमार सिर, भई हार तरवार ॥५॥
कहा प्रीति संसारतैं, देखौ खोटी बात।
पीव जिमाई अहि डसी, मंगी (?) कीनौं घात ॥६॥
नारिनका विसवास नहिं, औगुन प्रगट निहार।
रानी राची कूबरैं, लियौ जसोधर मार ॥७॥
भोज-नारि म्हावत रची, म्हावत गनिका संग।
गनिका-फल ले नृप दियौ, इसौ जगतकौ रंग ॥८॥

---

[1] समुद्र। [2] अरण्य-वनवास।

बरनी जाहि न कर्मगति, भली बुरी ह्वै जात।
दोऊ अगरत होत हैं, बीच परैको घात ॥९॥
बुरी करैं है ज्यों भली, लखो करमके ठाट।
नम्यौं रोग भाम्यौं जगत, फोरत सिरकों भाट ॥१०॥
करैं और भोगैं अवर, अनुचित विधिकी बात।
छेद करै नो भागि ज्यों, पानेसी मर जात ॥११॥
एक करैं दुख सब लहैं, ऐसे विधिके काम।
एक हरत है कटक धन, मारा जावै गाम ॥१२॥
बहुत करैं फल एक ले, ऐसा कर्म अनूप।
करैं फौज संग्रामकों, हारैं जीतै भूप ॥१३॥
को जानै को कह सकै, है अचिंत्य गति कर्म।
यातैं सचैं ना छुटैं, छुटै आदरै धर्म ॥१४॥
धर्म सुखांकुर मूल है, पाप दुखांकर खान।
गुरुआम्नायतैं धर्म गहि, करि आपा पर ज्ञान ॥१५॥
गुरुआम्नाय विन होत नहिं, आपा परका ज्ञान।
ज्ञान विनाको न्यागवो, ज्यों हाथीको न्हानै ॥१६॥
नींव विना मंदिर नहीं, मूल विना नहिं रोख।
आपा पर सरधा विना, नहीं धर्मका पोख ॥१७॥
सुलभ मनुपपद देवपद, जनम-मरन-दुखदान।
दुलभ सरधाजुत धरम, अद्भुत सुखकी खान ॥१८॥

१ स्नान, २ रूख-वृक्ष।

जो निज अनुभव होत सुख, ताकी महिमा नाहिं ।
सुरपति नरपति नागपति, राखत ताकी चाहि ॥१९॥
मोह तात है जगतका, संतति देत बढ़ाय ।
आपा-पर-सरधानतैं, हटै घटै मिट जाय ॥२०॥
पंचपरमगुरुभक्ति विन, घटै न मोकों जोर ।
प्रथम पूजकै परमगुरु, काज करो फुनि और ॥२१॥
गई आयुको जोइये, कहा कमायौ धर्म ।
गई सुगई अवहू करो, तो पावोगे शर्म ॥२२॥
आँपत आगम परम गुरु, तीन धरमके अंग ।
झूठे सेयैं धर्म नहिं, सांचे सेये रंग ॥२३॥
अपने अपने मतविषै, इष्ट पूज है ठीक ।
ऐसी दृष्टि न कीजिये, कर लीजे तहकीक ॥२४॥
रहनी करनी मुख वचन-परंपरा मिलि जाय ।
दोषरहित सव गुनसहित, सेजे ताके पाय ॥२५॥
दोष अठारातैं रहित, परमौदारिक काय ।
सव ज्ञायक दिवि-धुनिसहित, सो आपत सुखदाय ॥२६॥
आँपत-आननका कह्या, परंपरा अविरुद्ध ।
दयासहित हिंसारहित, सो परमागम सिद्ध ॥२७॥
वीतराग विज्ञान-धन, मुनिवर तपी दयाल ।

---

१ मोहका । २ देखिये । ३ मोक्ष । ४ आप्त-सच्चा देव ।
५ सेइये । ६ आप्तके मुखका कहा हुआ ।

परंपरा आगम निपुन, गुरु निग्रंथ विसाल ॥२८॥
सत्रु मित्र लोहा कनक, सुख दुख मानिक कांच।
लाभ अलाभ समान सब, ऐसे गुरु लखि राच ॥२९॥
मारक उपकारक खरे, पूछे बात विसेस।
ढोडनकों सम हित करें, करें सुगुरु उपदेस ॥३०॥
सुरपति नरपति नागपति, वसुविधि दर्व मिलाय।
पूजे वसु करमन हरन, आय सुगुरुके पाय ॥३१॥
सत्य क्षमा निरलोभ ब्रह्म, सरल सलज विनमान।
निरममता त्यागी दमी, धर्म अंग ये जान ॥३२॥
हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह पाप।
दसे अलप सब त्यागिवों, धरम दोय विधि थाप ॥३३॥
धर्म क्षमादिक अंग दस, धर्म दयामय जान।
दरसन ज्ञान चरित धरम, धरम तत्त्वसरधान ॥३४॥
इते धरमके अंग सब, इनका फल सिवधाम।
धर्म सुभाव जु आतमा, धरमी आतमराम ॥३५॥
अधरम फेरत चतुरगति, जनम मरन दुखधाम।
धरम उद्धरन जगतमें, थापै अविचल ठाम ॥३६॥
गुरुमुख सुन गाढ़ो रह्यो, त्यागों वांयस-मास।
सो श्रेणिक अब पांयसी, तीर्थंकर शिववास ॥३७॥

---

१ एक देश त्याग और सर्वथा त्याग अर्थात् अणुव्रत और महाव्रत। २ कौएका मांस। ३ पावेंगे।

सुलट्यौ भील अज्ञान हू, वनमैं लखि मुनिराज।
अनुक्रम विधिकौं काटकै, भए नेमिजिनराज ॥३८॥

अनुभवप्रशंसा।

इंद्र नरिंद फनिंद सब, तीन कालमैं होय।
एक पलक अनुभौ जितौ, तिनकौ सुख नहिं कोय ॥३९॥
पूछै कैसा ब्रह्म है, केती मिश्री मिष्ट।
स्वादै सो ही जान है, उपमा मिलै न इष्ट ॥४०॥
अनुभौ-रस चाखे विना, पढवेमैं सुख नाहिं।
मैथुन सुख जानै न ज्यौं, क्वांरी गीतनमाहिं ॥४१॥
जानै चाख्यौ ब्रह्मसुख, गुरुतैं पूछि विधान।
कोटि जतनहूके कियैं, सो नहिं राचै आन ॥४२॥
बाह्य-भेष[1] उज्जल किया, पाप रहा मनमाहिं।
सीसी[2] बाहिर धोवतां, उज्जल होवै नाहिं ॥४३॥
पहिले अंदर सुध करै, पीछै बाहर धोय।
तब सीसी उज्जल बनै, जानैं सिगरे लोय ॥४४॥

गुरुप्रशंसा।

गुरु विन ज्ञान मिलै नहीं, करौ जतन किन कोय।
विना सिखाये मिनख[3] तौ, नाहिं तिर सकै तोय[4] ॥४५॥
जो पुस्तक पढ़ि सीख है, गुरुकौं पूछै नाहिं।
सो सोभा नाहीं लहै, ज्यौं बक हंसामाहिं ॥४६॥

---

१ बाह्यवेष-ऊपरी रूप। २ बोतल-बाटली। ३ मनुष्य। ४ पानी।

गुरुनुकूल चालै नहीं, चालै सुतै¹–सुभाय ।
सो नहिं पावै थानकौं, भववनमैं भरमाय ॥ ४७ ॥
क्लेश मिटै आनँद बढ़ै, लाभै सुगम उपाय ।
गुरुकौं पूछिरि² चालतां, सहज थान मिल जाय ॥ ४८ ॥
तन मन धन सुख संपदा, गुरुपै डारूं वार ।
भवसमुद्रतैं डूबतां, गुरु ही काढ़नहार ॥ ४९ ॥
स्वारथके जग जन हितू, बिन स्वारथ तज देत ।
नीच ऊंच निरखैं न गुरु, जीवजाततैं हेत ॥ ५० ॥
ब्यौंत परैं हित करत हैं, तात मात सुत भ्रात ।
सदा सर्वदा हित करैं, गुरुके मुखकी बात ॥ ५१ ॥
गुरु समान संसारमैं, मात पिता सुत नाहिं ।
गुरु तौ तारैं सर्वथा, ए बोरैं भवमाहिं ॥ ५२ ॥
गुरु उपदेश लहे बिना, आप कुशल है जात ।
ते अजान क्यौं टारि हैं, करी चतुरकी³ घात ॥ ५३ ॥
जहां तहां मिलिजात हैं, संपति तिय सुत भ्रात ।
बड़े भागतैं अति कठिन, सुगुरु कहीं मिल जात ॥ ५४ ॥
पुस्तक बांची इकगुनी, गुरुमुख गुनी हजार ।
तातैं बड़े तलाशतैं, सुनिजे बचन उचार ॥ ५५ ॥
गुरु बानी अंमृत झरत, पी लीनी छिनमाहिं ।
अमर भया तत्खिन सु तौ, फिर दुख पावै नाहिं ॥ ५६ ॥

---

१ स्वतः स्वभाव–अपने आप । २ पूछकरके । ३ चतुर पुरुषोंकी की हुई चोट–आक्षेपको कैसे टालेंगे ?

भली भई नरगति मिली, सुनैं सुगुरुके वैन ।
दाह मिट्या उरका अबै, पाय लई चित चैन ॥ ५७ ॥
क्रोध वचन गुरुका जदपि, तदपि सुखांकरि धाम ।
जैसैं भानु दुपहरका, सीतलता परिणाम ॥ ५८ ॥
परमारथका गुरु हितू, स्वारथका संसार ।
सब मिलि मोह बढ़ात हैं, सुत तिय किंकर यार ॥ ५९ ॥
तीरथ तीरथ क्यौं फिरै, तीरथ तौ घटमाहिं ।
जे थिर हुए सो तिर गये, अथिर तिरत हैं नाहिं ॥ ६० ॥
कौन देत है मनुष भव, कौन देत है राज ।
याके पहचानैं विना, झूठा करत इलाज ॥ ६१ ॥
प्रात धर्म फुनि अर्थरुचि, काम करै निसि सेव ।
रुचै निरंतर मोक्ष मन, सो मानुप नहिं देव ॥ ६२ ॥
संतोषामृत पान करि, जे हैं समतावान ।
तिनके सुख सम लुब्धकौं[1], अनंत भाग नहिं जान ॥६३॥
लोभ मूल है पापकौ, भोग मूल है व्याधि ।
हेत[2] जु मूल कलेशकौ, तिहूं त्यागि सुख साधि ॥ ६४ ॥
हिंसातैं है पातकी, पातकतैं नरकाय[3] ।
नरक निकसिहै पातकी, संतति कठिन मिटाय ॥ ६५ ॥
हिंसककौ बैरी जगत, कोइ न करै सहाय ।
मरता निबल गरीब लखि, हर कोइ लेत बचाय ॥ ६६ ॥

---

१ लोभीको । २ मोह । ३ नरकायु—नरककी थिति ।

अपनैं भाव विगाड़तैं, निह्चैं लागत पाप ।
पर अकाज तौं हो न हो, होत कलंकी आप ॥ ६७ ॥
जितौं पाप चितचाहसौं, जीव सताए होय ।
आरंभ उद्यमकौं करत, तातैं थोरौ जोय ॥ ६८ ॥
ये हिंसाके भेद हैं, चोर चुगल विभिचार ।
क्रोध कपट मद लोभ फुनि, आरंभ असत उचार ॥६९॥
चोर डरैं निद्रा तजैं, करें खोट उपाय ।
नृप मारैं मारैं धनी, परभौं नरकां जाय ॥ ७० ॥
छानैं पर चुगली करैं, उज्जल भेष बनाय ।
ते तौं बुगला सारिखे, पर अकाज करि खाँय ॥ ७१ ॥
लाज धर्म भय ना करैं, कामी कूकर एक ।
भैनं मानजी नीचकुल, इनके नाहिं विवेक ॥ ७२ ॥
नीति अनीति लखैं नहीं, लखै न आपविगार ।
पर जारैं आपन जरैं, क्रोध अगनिकी झार ॥ ७३ ॥
तन मूधे मूधे वचन, मनमें राखैं फेर ।
अगनि ढकी तौं क्या हुआ, जारत करत न वेर ॥ ७४ ॥
कुल व्योहारकौं तज दिया, गरवीले मनमाहिं ।
अवसि परैंगे कूप ते, जे मारगमें नाहिं ॥ ७५ ॥
बाहिर चुगि शुकै उड़ गये, ते तौं फिरैं खुस्याल ।
अति लालच भीतर धसे, ते शुक उलझे जाल ॥ ७६ ॥

१ छुप करके । २ बहिन । ३ तोते ।

आरँभ विन जीवन नहीं, आरँभमाहीं पाप ।
तातैं अति तजि अलप सो, कीजै विना विलाप ॥ ७७ ॥
असत वैन नहिं बोलिये, तातैं होत विगार ।
वे असत्य नहिं सत्य है, जातैं है उपकार ॥ ७८ ॥
क्रोधि लोभि कामी मदी, चार सूझते अंध ।
इनकी संगति छोड़िये, नहिं कीजै सनबंध ॥ ७९ ॥
झूठ जुलम जालिम जबर, जलद जंगमैं जान ।
जक न धरै जगमें अजस, जूआ जहर समान ॥ ८० ॥
जाकौं छीवत चतुर नर, डरैं करैं हैं न्हान[1] ।
इसा मासका ग्रासतैं, क्यौं नहिं करौ गिलान ॥ ८१ ॥
मदिरातैं मदमत्त है, मदतैं होत अज्ञान ।
ज्ञान विना सुत मातकौं, कहै भामिनी मान ॥ ८२ ॥
गान तान लै मानकैं, हरै ज्ञान धन प्रान ।
सुरापान पैलखानकौं[2], गनिका रचत कुध्यान ॥ ८३ ॥
तिन[3] चावै चावै न धन, नागे कांगे जान ।
नाहक क्यौ मारै इन्हैं, सब जिय आप समान ॥ ८४ ॥
नृप डंडै भंडै जनम, खंडै धर्म रु ज्ञान ।
कुल लाजै भाजैं हितू, विसन दुखांकी खान ॥ ८५ ॥
बड़े सीख बकबौ करैं, विसनी ले न विवेक ।
जैसैं बासन[4] चीकना, बूंद न लागै एक ॥ ८६ ॥

१ स्नान । २ मास खानेको । ३ तृण—घास । ४ बर्तन ।

मार लोभ पुचकारतें, विसनी तजै न फैल ।
जैसैं टट्टू अटकला, चलैं न सीधी गैल ॥ ८७ ॥
ऊपरले मनतैं करै, विसनी जन कुलकाज ।
ब्रह्मसुरत भूलैं न ज्यौं, काज करत रिखिराज ॥ ८८ ॥
विसन हलाहलतें अधिक, क्योंकर सेतै अज्ञान ।
विसन विगाड़ैं दोय भव, जहर हरै अब प्रान ॥ ८९ ॥
नरभव कारण मुक्तका, चाहत इंद्र फनिंद ।
ताकों खोवत विसनमें, सो निंदनमैं निंद ॥ ९० ॥
जैसौ गाढ़ौ विसनमें, तैसौ ब्रह्मसौं होय ।
जनम जनमके अघ किये, पलमें नाखैं धोय ॥ ९१ ॥
कीनै पाप पहार से, कोटि जनममैं भूर ।
अपना अनुभव वज्रसम, कर डालैं चकचूर ॥ ९२ ॥
हितकरनी धरनी सुजस, भयहरनी सुखकार ।
तरनी भवदधिकी दया, वरनी पटमत सार ॥ ९३ ॥
दया करत सो तात सम, गुरु नृप भ्रात समान ।
दयारहित जे हिंसकी, हरि अहि अगनि प्रमान ॥ ९४ ॥
पंथ सनातन चालजे, कहजे हितमित बैन ।
अपना इष्ट न छोड़जे सहजे चैन अचैन ॥ ९५ ॥

---

१ अड़नेवाला घोडा । २ ऋषीश्वर । ३ सेवन करते हैं । ४ चलिये । ५ कहिये । ६ छोड़िये । ७ सहिये ।

कविप्रशस्ति ।

मधि नायक सिरपैंच ज्यौं, जैपुर मधि ढूंढार ।
नृप जयसिंह सुरिंद तहां, पिरजाकौं हितकार ॥ ९६ ॥
कीनैं बुधजन सातसै, सुगम सुभाषित हेर ।
सुनत पढ़त समझैं सरब, हरैं कुबुधिका फेर ॥ ९७ ॥
संवत ठारासै असी, एक वरसतें घाट ।
जेठ कृष्ण रवि अष्टमी, हूवौ सतसइ पाठ ॥ ९८ ॥
पुन्य हरत रिपुकष्टकौं, पुन्य हरत रुज व्याधि ।
पुन्य करत संसार सुख, पुन्य निरंतर साधि ॥ ९९ ॥
भूख सहौ दारिद सहौ, सहौ लोक अपकार ।
निंदकाम तुम मति करौ, यहै ग्रंथकौ सार ७००
ग्राम नगर गढ़ देशमैं, राजप्रजाके गेह ।
पुन्य धरम होवौ करै, मंगल रहौ अछेह ॥ ७०१ ॥
ना काहूकी प्रेरना, ना काहूकी आस ।
अपनी मति तिखी करन, वरन्यौ वरनविलास ॥ ७०२ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

१ जेठ वदी ८ सवत् १८७९ । २ अपमान—तिरस्कार ।